

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय बारावा

जय जय शुद्धे। उदारे प्रसिद्धे। अनव्रत आनंदे। वर्षतिये ॥१॥ विषयव्याळें मिठी। दिधलिया नुठी ताठी। ते तुझिये गुरुकृपादृष्टी। निर्विष होय ॥२॥ तरि कवणातें तापु पोळी। कैसेनि वो शोकु जाळी। जरि प्रसादरसकल्लोळीं। पूरें येसि तूं ॥३॥ योगसुखाचे सोहळे। सेवकां तुझेनि स्नेहाळे। सोहंसिद्धीचे लळे। पाळिसी तूं ॥४॥ आधारशक्तीचां अंकीं। वाढविसी कौतुकीं। हृदयाकाशपल्लकीं। परिये देसी निजे ॥५॥ प्रत्यकज्योतिची वोवाळणी। करिसी मनपवनांचीं खेळणीं। आत्मसुखाचीं बाळलेणीं। लेवविसी ॥६॥ सतरावियेचें स्तन्य देसी। अनाहताचा हल्लरु गासी। समाधिबोधें निजविसी। बुझाऊनि

॥७॥ म्हणोनि साधकां तूं माउली। पिके सारस्वत तुझां पाउलीं। या कारणें मी साउली। न संडीं तुझी ॥८॥ अवो सद्गुरुचिये कृपादृष्टी। तुझे कारुण्य जयातें आर्धिष्टी। तो सकळ विद्यांचिये सृष्टी। धात्रा होय ॥९॥ म्हणोनि अंबे श्रीमंतें। निजजनकल्पलते। आज्ञापीं मातें। ग्रंथनिरूपणीं ॥१०॥ नवरसां भरवीं सागरु। करवीं उचित रत्नांचे आगरु। भावार्थाचे गिरिवरु। निफजवीं माये ॥११॥ साहित्य सोनियाचिया खाणी। उघडवीं देशियेचिया आक्षोणी। विवेकवेलीची लावणी। हों देई सेंघ ॥१२॥ संवादफळनिधानें। प्रमेयाचीं उद्यानें। लावीं म्हणें गहनें। निरंतर ॥१३॥ पाखांडाचे दरकुटे। मोडीं वाग्वद अव्हांटे। कुतर्काचीं दुष्टें। सावजें फेडीं ॥१४॥ श्रीकृष्णगुणीं मातें। सर्वत्र करीं वो सरतें। राणिवे बैसवी श्रोते। श्रवणाचिये ॥१५॥ मन्हाठियेचां नगरीं। ब्रह्मविद्येचा सुकाळु करीं। घेणेंदेणें सुखचिवरी। हों देई या जगा ॥१६॥ तूं आपुलेनि स्नेहपल्लवें। मातें पांघुरविशील सदैवें। तरि आतांचि हें आघवें। निर्मीन माये ॥१७॥ इये विनवणीयेसाठीं। अवलोकिलें गुरु कृपादृष्टी। म्हणें गीतार्थेसीं उठीं। न बोलें बहु ॥१८॥ तेथ जी जी महाप्रसादु। म्हणोनि साविया जाला स्वानंदु। आतां निरोपीन प्रबंधु। अवधान दीजे ॥१९॥

अर्जुन उवाच : एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासतो। ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

तरी सकळवीराधिराजु। जो सोमवंशीं विजयध्वजु। बोलता जाहला आत्मजु। पांडुनृपाचा ॥२०॥ कृष्णातें म्हणे अवधारिलें। आपण विश्वरूप मज दाविलें। तंव नवल म्हणोनि बिहालें। चित्त माझें

॥२१॥ आणि ये कृष्णमूर्तीची सवे। यालागीं सोय धरिली जीवें। तंव नको म्हणोनि देवें। वारिलें मातें
 ॥२२॥ तरि व्यक्त आणि अव्यक्त। हें तूंचि एक निभ्रांता। भक्ती पाविजे व्यक्त। अव्यक्त योगें
 ॥२३॥ या दोनी जी वाटा। तूतें पावावया वैकुंठा। व्यक्ताव्यक्त दारवंठां। रिगिजे येथ ॥२४॥ पें जे
 वानी श्यातुका। तेचि वेगळिया वाला येका। म्हणोनि एकदेशीया व्यापका। सरिसा पाडू ॥२५॥
 अमृताचां सागरीं। जे लाभे सामर्थ्याची थोरी। तेचि दे अमृतलहरी। चुळीं घेतलिया ॥२६॥ हे कीर
 माझां चित्तीं। प्रतीति आथि जी निरुती। परि पुसणें योगपती। तें याचिलागीं ॥२७॥ जें देवां तुम्हीं
 नावेक। अंगिकारिलें व्यापका। तें साचचि कीं कवतिका। हें जाणावया ॥२८॥ तरि तुजलागीं कर्म।
 तूंचि जयांचें परमा। भक्तीसी मनोधर्म। विकोनि घातला ॥२९॥ इत्यादि सर्वापरी। जे भक्त तूतें हरी।
 बांधोनियां जिह्वाही। उपासिती ॥३०॥ आणि जें प्रणवापैलीकडे। वैखरीयेसि जें कानडें। कायिसयाहि
 सांगडें। नव्हे जें वस्तु ॥३१॥ तें अक्षर जी अव्यक्त। निर्देशदेशरहिता। सोहंभावे उपासिता। ज्ञानिये
 जें ॥३२॥ तयां आणि जी भक्तां। येरयेरांमार्जीं अनंता। कवणें योगु तत्त्वता। जाणितला सांगा
 ॥३३॥ इया किरीटीचिया बोला। तो जगद्वंधु संतोषला। म्हणे हो प्रश्न भला। जाणसी करूं ॥३४॥

श्रीभगवानुवाच : मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

तरि अस्तुगिरीचां उपकंठीं। रिगालिया रविबिंबापाठीं। रश्मी जैसे किरीटी। संचरती ॥३५॥

वर्षाकाळीं सरिता। जैसी चढों लागें पांडुसुता। तैसी नीच नवी भजतां। श्रद्धा दिसे ॥३६॥ परि
 ठाकिलियाहि सागरू। जैसा मागीलही यावा आर्निवारू। तिये गंगेचिये ऐसा पडिभरू। प्रेमभावा
 ॥३७॥ तैसें सर्वेद्रियासहिता। मजमार्जीं सूनि चित्ता। जे रातिदिवो न म्हणता। उपासिती ॥३८॥
 यापरी जे भक्त। आपणपें मज देता। तेचि मी योगयुक्त। परम मानीं ॥३९॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते। सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

आणि येर तेही पांडवा। जे आरूढोनि सोहंभावा। झोंबती निरवयवा। अक्षरासी ॥४०॥ मनाची
 नखी न लगे। जेथ बुद्धीची दृष्टी न रिगे। इंद्रिया कीर जोगें। काड होईल ॥४१॥ परि ध्यानाही कुवाडें।
 म्हणोनि एके ठायीं न संपडे। व्यक्तीसि माजिवडें। कवणेही नोहे ॥४२॥ जया सर्वत्र सर्वपणें। सर्वाही
 काळीं असणें। जें पावूनि चिंतवणें। हिंपुटी जाहलें ॥४३॥ जें होय ना नोहे। जें नाही ना आहे। ऐसें
 म्हणोनि उपाये। उपजतीचिना ॥४४॥ जें चळे ना ढळे। सरे ना मैळे। तें आपुलेनिचि बळें। आंगविलें
 जिहीं ॥४५॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः। ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

पें वैराग्यमहापावकें। जाळूनि विषयांचीं कटकें। अधपलीं तवकें। इंद्रियें धरिलीं ॥४६॥ मग
 संयमाची धाटी। सूनि मुरडिलीं उफराटीं। इंद्रियें कोंडिलीं कपाटीं। हृदयाचां ॥४७॥ अपानींचिया
 कवाडा। लावोनि आसनमुद्रा सुहाडा। मूळबंधाचा हुडा। पन्नासिला ॥४८॥ आशेचे लाग तोडिले।

अधैर्याचें कडे झाडिले। निद्रेचें शोधिलें। काळवखें ॥४९॥ वज्राग्नीचां ज्वाळीं। करुनि अपानधातूंची
 होळी। व्याधींचां सिसाळीं। पूजिलीं यंत्रें ॥५०॥ मग कुंडलिनियेचा टेंभा। आधारीं केला उभा। तया
 चोजवलें प्रभा। निमथावरी ॥५१॥ नवद्वारांचां चौचकीं। बाणूनि संयतीची आडवंकी। उघडली
 खिडकी। ककारांतींची ॥५२॥ प्राणशक्तिचामुंडे। प्रहारुनि संकल्पमेंढे। मनोमहिषाचेनि मुंडें। दिधलीं
 बळी ॥५३॥ चंद्रसूर्या बुझावणी। करुनि अनाहताची सुडावणी। सतरावियेचें पाणी। जितिलें वेगें
 ॥५४॥ मग मध्यमामध्य विवरें। तेणें कोरिवें दादरें। ठालिं चवरें। ब्रह्मरंध्रीचें ॥५५॥ वरी मकारांत
 सोपान। तें सांडोनिया गहन। काखे सूनियां गगन। भरलें ब्रह्मीं ॥५६॥ ऐसेन जे समबुद्धी। गिळावया
 सोहंसिद्धी। आंगविताति निरवधी। योगदुर्गे ॥५७॥ आपुलिया साटोवाटी। शून्य घेती उठाउठी।
 तेही मातेंचि किरीटी। पावती गा ॥५८॥ वांचूनि योगाचेनि बळें। आर्थिक कांहीं मिळे। ऐसें नाहीं
 आगळें। कष्टचि तया ॥५९॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

जिहीं सकळभूतांचां हितीं। निरालंबीं अव्यक्तीं। पसरलिया आसक्ती। भक्तीवीण ॥६०॥
 तयां महेंद्रादि पदें। करिताति वाटवधें। आणि ऋद्धिसिद्धींचीं द्वंद्वें। पडोनि ठाती ॥६१॥ कामक्रोधांचे
 विलग। उठावती अनेग। आणि शून्येंसीं आंग। जुंझवावें कीं ॥६२॥ ताहाने ताहानचि पियावी।

भुकेलिया भूकचि खावी। अहोरात्र वावीं। मवावा वारा ॥६३॥ उन्निद्रेयाचें पड्डणें। निरोधाचें वेल्हावणें।
 झाडासि साजणें। चाळावें गा ॥६४॥ शीत वेढावें। उष्ण पांघुरावें। वृष्टीचिया असावें। घराआंतु
 ॥६५॥ किंबहुना पांडवा। हा आग्निप्रवेशु नीच नवा। भातारेंवीण करावा। तो हा योगु ॥६६॥ एथ
 स्वामीचें काज। ना बापिकें व्याज। परि मरणेंसीं जुंझा। नीच नवें ॥६७॥ ऐसें मृत्यूहूनि तिखा। कां घोंटे
 कढत विखा। डोंगर गिलितां मुखा। न फाटे काई ॥६८॥ म्हणोनि योगाचिया वाटा। जे निगाले गा
 सुभटा। तयां दुःखाचाचि वाटा। भागा आला ॥६९॥ पाहें पां लोहाचे चणे। जें बोचरिया पडती खाणें।
 तें पोट भरणें कीं प्राणें। शुद्धी म्हणों ॥७०॥ म्हणोनि समुद्र बाहीं। तरणें आथि केंही। कां गगनामार्जीं
 पाई। खोलिजतु असे ॥७१॥ वळघलिया रणाची थाटी। आंगीं न लगतां काठी। सूर्याची पाउटी। कां
 होय गा ॥७२॥ यालागीं पांगुळा हेवा। नव्हे वायूसि पांडवा। तेवीं देहवंता जीवां। अव्यक्तीं गति
 ॥७३॥ ऐसाही जरी धिंवसा। बांधोनियां आकाशा। झोंबती तरी क्लेशा। पात्र होती ॥७४॥ म्हणोनि
 येर ते पार्था। नेणतीचि हे व्यथा। जे कां भक्तिपंथा। वोटंगले ॥७५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः। अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

कर्मेंद्रियें सुखें। करिती कर्में अशेखें। जियें कां वर्णविशेखें। भागा आलीं ॥७६॥ विधीतें पाळिता।
 निषेधातें गाळिता। मज देऊनि जाळिता। कर्मफळें ॥७७॥ ययापरी पाहीं। अर्जुना माझां ठाई।
 संन्यासूनि नाहीं। करिती कर्में ॥७८॥ आणीकही जे जे सर्व। कायिक वाचिक मानसिक भावा। तयां

मीवांचूनि धांवा आनौती नाहीं ॥७९॥ ऐसे जे मत्परा उपासिती निरंतरा ध्यानमिषें घरा माझें झाले ॥८०॥ जयांचिये आवडी। केली मजशीं कुळवाडी। भोग मोक्ष बापुडीं। त्यजिलीं कुळें ॥८१॥ ऐसे अनन्ययोगें। विकले जीवें मनें आंगें। तयांचें कायि एक सांगें। जें सर्व मी करीं ॥८२॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

किंबहुना धनुर्धरा। जो मातेचिया ये उदरा। तो मातेचा सोयरा। केतुला पां ॥८३॥ तेवीं मी तयां। जैसे असती तैसियां। कळिकाळ नोकोनियां। घेतला पटा ॥८४॥ एन्हवीं तरी माझिया भक्तां। आणि संसाराची चिंता। काय समर्थाची कांता। कोरान्न मागे ॥८५॥ तैसे ते माझें। कलत्र हें जाणिजे। कायिसेनिही न लाजें। तयांचेनि मी ॥८६॥ जन्ममृत्यूचां लाटीं। झळंबती इया सृष्टी। तें देखोनियां पोटीं। ऐसें जाहलें ॥८७॥ भवसिंधूचेनि माजें। कवणासि धाकु नुपजे। येथ जरी कीं माझे। बिहिती हन ॥८८॥ म्हणोनि गा पांडवा। मूर्तीचा मेळावा। करुनि त्यांचिया गांवा। धांवतु आलों ॥८९॥ नामाचिया सहस्रवरी। नावा इया अवधारीं। सजूनियां संसारीं। तारु जाहलों ॥९०॥ सडे जे देखिले। ते ध्यानकासे लाविले। पस्त्राही घातले। तरियावरी ॥९१॥ प्रेमाची पेटी। बांधली एकाचां पोटीं। मग आणिले तटीं। सायुज्याचां ॥९२॥ परि भक्तांचेनि नावें। चतुष्पदादि आघवे। वैकुंठींचिये राणिवे। योग्य केले ॥९३॥ म्हणोनि गा भक्तां। नाहीं एकही चिंता। तयातें समुद्धर्ता। आथि मी सदा ॥९४॥

आणि जेव्हांचि का भक्तीं। दिधली चित्तवृत्ती। तेव्हांचि मज सूती। तयांचिये नाटीं ॥९५॥ याकारणें गा भक्तराया। हा मंत्र तुवां धनंजया। कीजे जे यया। मार्गा भजिजे ॥९६॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

अगा मानस हें एक। माझां स्वरूपीं वृत्तिका। करुनि घाली निष्टका। बुद्धिनिश्चयेंसी ॥९७॥ इयें दोनी सरिसीं। मजमाजीं प्रेमेंसीं। रिगालीं तरी पावसी। मातें तूं गा ॥९८॥ जे मन बुद्धि इहीं। घर केलें माझां ठायीं। तरि सांगें मग काई। मी तूं ऐसें उरे ॥९९॥ म्हणोनि दिवा पालवे। सवेंचि तेज मालवे। कां रविबिंबासवें। प्रकाशु जाय ॥१००॥ उचललेया प्राणासरिसीं। इंद्रियेंही निगती जैसीं। तैसा मनोबुद्धिपार्शीं। अहंकारु ये ॥१०१॥ म्हणोनि माझां स्वरूपीं। मनबुद्धि इयें निक्षेपीं। येतुलेनि सर्वव्यापी। मीचि होसी ॥१०२॥ यया बोला कांहीं। अनारिसें नाहीं। आपली आण पाहीं। वाहतु असें गा ॥१०३॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्। अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाऽऽप्तुं धनंजय ॥९॥

अथवा हें चित्त। मनबुद्धीसहीत। माझां हातीं अचुंबित। न शकसी देवों ॥१०४॥ तरि गा ऐसें करीं। यां आठां पाहारांमाझारीं। मोटकें निमिषभरी। देतु जाय ॥१०५॥ मग जें जें कां निमिख। देखेल माझें सुखा। तेतुलें अरोचका। विषयीं घेईल ॥१०६॥ जैसा शरत्कालु रिगे। आणि सरिता वोहटू लागे। तैसें चित्त काढेल वेगें। प्रपंचौनि ॥१०७॥ मग पुनवेहूनि जैसें। शशिबिंब दिसें दिसें। हारपत अंवसे। नाहींचि होय ॥१०८॥ तैसें भोगाआंतूनि निगतां। चित्त मजमाजीं रिगतां। हळूहळू पांडुसुता। मीचि होईल ॥१०९॥ अगा

अभ्यासयोगु म्हणजे। तो हा एक जाणजे। येणें कांहीं न निपजे। ऐसें नाहीं ॥११०॥ पै अभ्यासाचेनि बळें। एकां गति अंतराळे। व्याघ्र सर्प प्रांजळे। केले एकीं ॥११॥ विष कीं आहारीं पडे। समुद्रीं पायवाट जोडे। एकीं वाग्रह थोकडें। अभ्यासें केलें ॥१२॥ म्हणोनि अभ्यासासि कांहीं। सर्वथा दुष्कर नाहीं। यालागीं माझां ठायीं। अभ्यासें मिळ ॥१३॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव। मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

कां अभ्यासाही लागीं। कसु नाहीं तुझां आंगीं। तरी आहासी जया भंगीं। तैसाचि अस ॥१४॥ इंद्रियें न कोडीं। भोगातें न तोडीं। आर्भिमानु न संडीं। स्वजातीचा ॥१५॥ कुळधर्मु चाळीं। विधिनिषेध पाळीं। मग सुखें तुज सरळी। दिधली आहे ॥१६॥ परि मनें वाचा देहें। जैसा जो व्यापारु होये। तो मी करितु आहे। ऐसें न म्हणे ॥१७॥ करणें कां न करणें। हें आघवें तोचि जाणे। विश्व चळतसे जेणें। परमात्मेनि ॥१८॥ उण्यापुरेयाचें कांहीं। उरों नेदीं आपुलां ठायीं। स्वजातीचि करुनि घेई। जीवित हें ॥१९॥ माळियें जेउतें नेलें। तेउतें निवांतचि गेलें। तया पाणिया ऐसें केलें। होआवें गा ॥१२०॥ एन्ही तरी सुभटा। उजू कां अव्हांटा। रथु काई खटपटा। करितु असे ॥२१॥ म्हणोनि प्रवृत्ति आणि निवृत्ती। इयें वोझीं नेघें मती। अखंड चित्तवृत्ती। आठवीं मातें ॥२२॥ आणि जें जें कर्म निपजे। तें थोडें बहु न म्हणजे। निवांतचि आर्पिजे। माझा ठायीं ॥२३॥ ऐसिया मद्भावना। तनुत्यागीं अर्जुना। तूं

सायुज्यसदना। माझिया येसी ॥२४॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः। सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

ना तरी हेंही तुज। नेदवे कर्म मज। तरी गा तूं भज। पंडुकुमरा ॥२५॥ बुद्धीचां पाठीं पोटीं। कर्माआदि कां शेवटीं। मातें बांधणें किरीटी। दुवाड जरी ॥२६॥ तरि हेंही असो। सांडीं माझा आर्तिसो। परि संयतिशीं वसो। बुद्धि तुझी ॥२७॥ आणि जेणें जेणें वेळें। घडती कर्मे सकळें। तयांचीं तियें फळें। त्यजितु जाय ॥२८॥ वृक्ष कां वेली। लोटती फळें आलीं। तैसीं सांडीं निपजलीं। कर्मे सिद्धें ॥२९॥ परि मातें मनीं धरावें। कां मजउद्देशें करावें। हें कांहीं नको आघवें। जाऊं दे शून्यां ॥१३०॥ खडकीं जैसें वर्षलें। कां आगीमार्जीं पेरिलें। कर्म मानीं देखिलें। स्वप्न जैसें ॥३१॥ अगा आत्मजेचां विषीं। जीवु जैसा निरभिलाषी। तैसा कर्मी अशेषीं। निकाम होई ॥३२॥ वन्हीची ज्वाळा जैशी। वायां जाय आकाशीं। क्रिया जिरों दें तैसी। शून्यामार्जीं ॥३३॥ अर्जुना हा फलत्यागु। आवडे कीर असलगु। परि योगामार्जीं योगु। धुरेचा हा ॥३४॥ येणें फलत्यागें सांडे। तें तें कर्म न विरुढे। एकचि वेळे वेळुझाडें। वांझें जैसीं ॥३५॥ तैसें येणेंचि शरीरें। शरीरा येणें सरे। किंबहुना येरझारे। चिरा पडे ॥३६॥ पै अभ्यासाचां पाउटीं। ठाकिजे ज्ञान किरीटी। ज्ञानें येइजे भेटी। ध्यानाचिये ॥३७॥ मग ध्यानासि खेंवा। देती आघवेचि भाव। तेव्हां कर्मजात सर्वा। दूरी ठाके ॥३८॥ कर्म जेथ दुरावे। तेथ फलत्यागु संभवे। त्यागास्तव आंगवे। शांति सगळी ॥३९॥ म्हणोनि यावया शांति। हाचि अनुक्रम

सुभद्रापती। अभ्यासुचि प्रस्तुतीं। करणें एथ ॥१४०॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते।

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥१२॥

अभ्यासाहूनि गहना। पार्था मग ज्ञाना। ज्ञानापासोनि ध्याना। विशेषिजे॥४१॥ मग कर्मफलत्यागु।
तो ध्यानापासोनि चांगु। त्यागाहूनि भोगु। शांतिसुखाचा॥४२॥ ऐसिया या वाटा। इहींचि पेणां
सुभटा। शांतीचा माजिवटा। ठाकिला जेणें॥४३॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥१३॥

जो सर्व भूतांचां ठायीं। द्वेषातें नेणेचि कहीं। आपपरु नाहीं। चैतन्या जैसा॥४४॥ उत्तमातें
धरिजे। अधम तरि अव्हेरिजे। हें कांहींच नेणेजे। वसुधा जेवीं॥४५॥ कां रायाचे देह चाळूं। रंका
परौतें गाळूं। हें न म्हणेचि कृपाळू। प्राणु पें गा ॥४६॥ गाईची तृषा हरूं। कां व्याघ्रा विष होऊनि मारूं।
ऐसें नेणेचि का करूं। तोय जैसें ॥४७॥ तैसी आघवांचि भूतमात्रीं। एकपणें जया मैत्री। कृपेशीं धात्री।
आपणपां जो॥४८॥ आणि मी तूं हे भाष नेणे। माझें कांहींचि न म्हणे। सुखदुःख जाणणें। नाहीं
जया॥४९॥ तेवींचि क्षमेलागीं। पृथ्वीसि पवाडु आंगीं। संतोषा उत्संगीं। दिधलें घर ॥१५०॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः। मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

वार्षियेंवीण सागरु। जैसा जळें नित्य निर्भरु। तैसा निरुपचारु। संतोषी जो ॥५१॥ वाहूनि
आपुली आण। धरी जो अंतःकरण। निश्चया साचपण। जयाचेनि ॥५२॥ जीवु परमात्मा दोन्ही।
बैसोनि ऐक्यासनीं। जयाचां हृदयभुवनीं। विराजती ॥५३॥ ऐसा योगसमृद्धि। होऊनि जो निरवधि।
अर्पी मनोबुद्धी। माझां ठायीं ॥५४॥ आंतु बाहेरि योगु। निर्वाळलेयाही चांगु। तरि माझा अनुरागु।
सप्रेम जया ॥५५॥ अर्जुना गा तो भक्तु। तोचि योगी तोचि मुक्तु। तो वल्लभा मी कांतु। ऐसा पढिये
॥५६॥ हें ना तो आवडे। मज जीवाचेनि पाडें। हेंहीं एथ थोडें। रूप करणें ॥५७॥ तरी पढियंतयाची
कहाणी। हे भुलीची भारणी। इयें तंव न बोलणीं। परि बोलवी श्रद्धा ॥५८॥ म्हणोनि गा आम्हां। वेगा
आली उपमा। एन्हवीं काय प्रेमा। अनुवादु असे ॥५९॥ आतां असो हें किरीटी। पै प्रियाचिया गोष्टी।
दुणा थांव उठी। आवडी गा ॥६०॥ तयाही वरी विपायें। प्रेमळु संवादिया होये। तिये गोडीसी आहे।
कांटाळें मग ॥६१॥ म्हणोनि गा पांडुसुता। तूंचि प्रियु आणि तूंचि श्रोता। वरी प्रियाची वार्ता। प्रसंगें
आली ॥६२॥ तरि आतां बोलों। भलें या सुखा मीनलों। ऐसें म्हणतखेवीं डोलों। लागले देवो॥ ६३॥
मग म्हणे जाण। तया भक्ताचें लक्षण। जया मी अंतःकरण। बैसों घालीं ॥६४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

तरी सिंधूचेनि माजें। जळचरां भय नुपजे। आणि जळचरीं नुबगिजे। समुद्रु जैसा ॥६५॥ तेविं
उन्मत्तें जगें। जयासि खंती न लगे। आणि जयाचेनि आंगें। न शिणे लोकु ॥६६॥ किबहुना पांडवा।

शरीर जैसे अवयवां। तैसा नुबगे जीवां। जीवपणें जो ॥६७॥ जगचि देह जाहलें। म्हणोनि प्रियाप्रिय गेलें। हर्षामर्ष ठेलो। दुजेनविण ॥६८॥ ऐसा द्वंद्वनिर्मुक्तु। भयोद्वेगरहितु। याही वरि भक्तु। माझां ठायीं ॥६९॥ तरि तयाचा गा मज मोहो। काय सांगों तो पढियावो। हें असो जीवें जीवो। माझेनि तो ॥७०॥ जो निजानंदें धाला। परिणामु आयुष्या आला। पूर्णते जाहला। वल्लभु जो ॥७१॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः। सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

जयाचां ठायीं पांडवा। अपेक्षे नाहीं रिगावा। सुखासि चढावा। जयाचें असणें ॥७२॥ मोक्ष देऊनि उदार। काशी होय कीर। परि वेचे शरीर। तिये गांवीं ॥७३॥ हिमवंतु दोष खाये। परि जीविताची हानि होये। तैसें शुचित्व नोहे। सज्जनाचें ॥७४॥ शुचित्वे शुचि गांग होये। आणि पापतापही जाये। परि तेथें आहे। बुडणें एक ॥७५॥ खोलिये पारु नेणिजे। तरी भक्तीं न बुडिजे। रोकडाचि लाहिजे। न मरतां मोक्षु ॥७६॥ संताचेनि अंगलगें। पापातें जिणणें गंगें। तेणें संतसंगे। शुचित्व कैसे ॥७७॥ म्हणोनि असो जो ऐसा। शुचित्वें तीर्था कुवासा। जेणें लंघविले दिशा। मनोमळ ॥७८॥ आंतु बाहेरि चोखाळु। सूर्य तैसा उजाळु। आणि तत्त्वार्थीचा पायाळु। देखणा जो ॥७९॥ व्यापक आणि उदास। जैसें कां आकाश। तैसें जयाचें मानस। सर्वत्र गा ॥८०॥ संसारव्यथे फिटला। जो नैराश्यें विनटला। व्याधाहातोनि सुटला। विहंगमु जैसा ॥८१॥ तैसा सतत जो सुखे। कोणीही टवंच न

देखे। नेणिजे गतायुषें। लज्जा जेवीं ॥८२॥ आणि कर्मरंभालागीं। जया अहंकृती नाहीं आंगीं। जैसा निरिंधन आगी। विझोनि जाय ॥८३॥ तैसा उपशमुचि भागा। जयासि आला पें गा। जो मोक्षाचिया आंगा। लिहिला असे ॥८४॥ अर्जुना हा ठावोवरी। जो सोहंभावो सरोभरी। तो द्वैताचां पैलतीरीं। निगों सरला ॥८५॥ कीं भक्तिसुखालागीं। आपणपेंचि दोही भागीं। वांटूनिया आंगीं। सेवकें बाणी ॥८६॥ येरा नाम मी ठेवी। मग भजती वोज बरवी। न भजतया दावी। योगिया जो ॥८७॥ तयाचें आम्हां व्यसना। आमुचें तो निजध्यान। किंबहुना समाधान। तो मिळे तें ॥८८॥ तयालागीं मज रूपा येणें। तयाचेनि मज एथें असणें। तया लोण कीजे जीवें प्राणें। ऐसा पढिये ॥८९॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति। शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जो आत्मलाभासारिखें। गोमटें कांहींचि न देखे। म्हणोनि भोगविशेखें। हरिखेजेना ॥९०॥ आपणचि विश्व जाहला। तरि भेदभावो सहजचि गेला। म्हणोनि द्वेषु ठेला। जया पुरुषा ॥९१॥ पें आपुलें जें साचें। तें कल्पांतींही न वचे। हें जाणोनि गताचें। न शोची जो ॥९२॥ आणि जयापरौतें कांहीं नाहीं। तें आपणपेंचि आपुलां ठायीं। जाहला यालागीं जो कांहीं। आकांक्षी ना ॥९३॥ वोखटें कां गोमटें। हें कांहांचि तया नुमटे। रात्रिदिवस न घटे। सूर्यासि जेवीं ॥९४॥ ऐसा बोधुचि केवळु। जो होऊनि असे निष्कळु। त्याहीवरी भजनशीळु। माझां ठायीं ॥९५॥ तरि तया ऐसें दुसरें। आम्हां पढियंतें सोयरें। नाहीं गा साचोकारें। तुझी आण ॥९६॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥१८॥

पार्था जयाचां ठायीं। वैषम्याची वार्ता नाहीं। रिपुमित्रां दोहीं। सरिसा पाडु ॥१७॥ कां घरिचियां उजियेडु करावा। पारखियां आंधारु पाडावा। हें नेणेचि गा पांडवा। दीपु जैसा ॥१८॥ जो खांडावया घावो घाली। कां लावणी जयानें केली। दोघां एकचि साउली। वृक्ष दे जैसा ॥१९॥ नातरी इक्षुदंडु। पाळितया गोडु। गाळितया कडु। नोहेचि जेवीं ॥२०॥ आरमित्रीं तैसा। अर्जुना जया भावो ऐसा। मानापमानीं सरिसा। होतु जाय ॥१॥ तिहीं ऋतूं समान। जैसैं कां गगना। तैसैं एकचि मान। शीतोष्णीं जया ॥२॥ दक्षिण उत्तर मारुता। मेरु जैसा पांडुसुता। तैसा सुखदुःखप्राप्ता। मध्यस्थु जो ॥३॥ माधुर्ये चंद्रिका। सरिसी राया रंका। तैसा जो सकळिकां। भूतां समु ॥४॥ आघविया जगा एका। सेव्य जैसैं उदका। तैसैं तयातें तिन्हीं लोका। आकांक्षिती ॥५॥ जो सबाह्यसंगु। सांडोनिया लागु। एकाकी असे आंगु। आंगीं सूनी ॥६॥

तुल्यनिन्दास्तुर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्। आर्निकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

जो निंदेते नेघे । स्तुति न श्लाघे। आकाशा न लगे। लेपु जैसा ॥७॥ तैसैं निंदे आणि स्तुती। मानु करुनि एके पांती। विचरे प्राणवृत्ती। जनीं वर्नीं ॥८॥ साच लटिकें दोन्ही। बोलोनि न बोले जाहला मौनी। जे भोगितां उन्मनी। आरायेना ॥९॥ जो यथालाभें न तोखे। अलाभें न पारुखे।

पाउसेंवीण न सुके। समुद्रु जैसा ॥२१०॥ आणि वायूसि एके ठायीं। बिढार जैसैं नाहीं। तैसा न धरीच केंहीं। आश्रयो जो ॥११॥ आघवाचि आकाशस्थिति। जेवीं वायूसि नित्य वसति। तेवीं जगचि विश्रांति। स्थान जया ॥१२॥ हें विश्वचि माझें घर। ऐसी मती जयाची स्थिर। किंबहुना चराचरा आपण जाहला ॥१३॥ मग याहीवरी पार्था। माझां भजनीं आस्था। तरी तयातें मी माथां। मुकुट करीं ॥१४॥ उत्तमासि मस्तका। खालविजे हें काय कौतुका। परि मानु करिती तिन्ही लोका। पायवणिया ॥१५॥ तरि श्रद्धावस्तूसि आदरु। करिता जाणजे प्रकारु। जरी होय श्रीगुरु। सदाशिवु ॥१६॥ परि हें असो आतां। महेशातें वानितां। आत्मस्तुति होता। संचारु असे ॥१७॥ ययालागीं हें नोहे। म्हणितलें रमानाहें। अर्जुना मी वाहें। शिरीं तयातें ॥१८॥ जे पुरुषार्थसिद्धि चौथी। घेऊनि आपुलां हातीं। रिगाला भक्तिपंथीं। जगा देतु ॥१९॥ कैवल्यचा आर्धिकारी। मोक्षाची सोडी बांधी करी। कीं जळाचिये परी। तळवटु घे ॥२०॥ म्हणोनि गा नमस्कारुं। तयातें आम्ही माथां मुकुट करुं। तयाची टांच धरुं। हृदयीं आम्ही ॥२१॥ तयाचिया गुणांची लेणीं। लेववूं आपुलिये वाणी। तयाची कीर्ति श्रवणीं। आम्ही लेऊं ॥२२॥ तो पहावा हे डोहळे। म्हणोनि अचक्षूसी मज डोळे। हातींचेनि लीलाकमळें। पुजूं तयातें ॥२३॥ दोंवरी दोनी। भुजा आलों घेऊनी। आलिंगावयालागुनी। तयाचें आंग ॥२४॥ तया संगाचेनि सुरवाडें। मज विदेहा देह धरणें घडे। किंबहुना आवडे। निरुपमु ॥२५॥ तेणेंसीं आम्हां मैत्र। एथ कायसें विचित्र । परि तयाचें चरित्र। ऐकती जे ॥२६॥ तेही प्राणापरौते।

आवडती हें निरुते। जे भक्तचरित्राते। प्रशंसिती ॥२७॥ जें हें अर्जुना साद्यंता सांगितलें प्रस्तुता।
भक्तियोगु समस्ता योगरूप ॥२८॥ जे मी प्रीति करीं। कां मनीं शिरसा धरीं। येवढी थोरी। जया
स्थितीये ॥२९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते। श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

ते हे गोष्टी रम्या। अमृतधारा धर्म्या। करिती प्रतीतिगम्या। आइकोनि जे ॥२३०॥ तैसीचि
श्रद्धेचेनि आदरें। जयांचां ठायीं विस्तरे। जीवीं जया थारे। जे अनुष्ठिती ॥३१॥ परि निरूपली जैसी।
तैसीच स्थिति मानसीं। मग सुक्षेत्रीं जैसी। पेरणी केली ॥३२॥ परि मातें परम करुनि। इये अर्थी प्रेम
धरुनि। हेंचि सर्वस्व मानूनि। घेती जे पै ॥३३॥ पार्था गा जगीं। तेचि भक्त तेचि योगी। उत्कंठा
तयालागीं। अखंड मज ॥३४॥ ते तीर्थ ते क्षेत्र। जगीं तेचि पवित्र। भक्तिकथेसी मैत्र। जयां पुरुषां
॥३५॥ आम्ही तयाचें करूं ध्याना। तो आमुचें देवतार्चना। तेवांचूनि आना। गोमटें नाहीं ॥३६॥ तयाचें
आम्हां व्यसना। तो आमुचें निधिनिधाना। किंबहुना समाधाना। तो मिळे तें ॥३७॥ पै प्रेमळाचि वार्ता।
जे अनुवादती पांडुसुता। ते मानूं परमदेवता। आपुली आम्ही ॥३८॥ ऐसें निजजनानंदें। तेणें
जगदादिकंदें। बोलिलें मुकुंदें। संजयो म्हणे ॥३९॥ राया जो निर्मळ। निष्कलंक लोककृपाळु। शरणागतां
प्रतिपाळु। शरण्यु जो ॥२४०॥ जो धर्मकीर्तिधवळु। अगाध दातृत्वे सरळु। अतुलबळें प्रबळु। बळिबंधनु

॥४१॥ जो पै सुरसहायशीळु। लोकलालनलीळु। प्रणतप्रतिपाळु। हा खेळु जयाचा ॥४२॥ जो
भक्तजनवत्सळु। प्रेमजनप्रांजळु। सत्यसेतु सरळु। कलानिधि ॥४३॥ तो कृष्णजी वैकुंठींचा। चक्रवर्ती
निजांचा। सांगतुसे येरु दैवाचा। आइकतु असे ॥४४॥ आतां ययावरी। निरूपिती परि। संजयो म्हणे
अवधारीं। धृतराष्ट्रातें ॥४५॥ तेचि रसाळ कथा। मन्हाठिया प्रतिपथा। आणिजेल आतां। अवधारिजो
॥४६॥ ज्ञानदेव म्हणे तुम्ही। संत वोळगावेति आम्ही। हें पढविलों जी स्वामी। निवृत्तिदेवीं ॥२४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः॥

(श्लोक २०; ओव्या २४७)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय तेरावा

आत्मरूप गणेशु स्मरण। सकळ विद्यांचें आर्धिकरण। तेचि वंदूं श्रीचरण। श्रीगुरुचे ॥१॥
जयांचेनि आठवें। शब्दसृष्टी आंगवे। सारस्वत आघवें। जिव्हेसि ये ॥२॥ वक्तृत्व गोडपणें। अमृतातें
पारु म्हणे। रस होती वोळगणें। अक्षरांसी ॥३॥ भावाचें अवतरण। अवतरविती खूण। हाता चढे
संपूर्ण। तत्त्वभेदें ॥४॥ श्रीगुरुचे पाया। जें हृदय गिंवसूनि ठाया। तें येवढें भाग्य होय। उन्मेषासी ॥५॥
ते नमस्कारुनि आतां। तो पितामहाचा पिता। लक्ष्मीयेचा भर्ता। ऐसें म्हणे ॥६॥

श्रीभगवानुवाच : इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

पार्था परिसिजे। देह हें क्षेत्र म्हणिजे। हेंचि जाणे तो बोलिजे। क्षेत्रज्ञु एथे ॥७॥ तरि क्षेत्रज्ञु जो
एथें। तो मी जाण निरुतें। जो सर्व क्षेत्रातें। संगोपोनि असे ॥८॥ क्षेत्र आणि क्षेत्रज्ञातें। जाणणें जें
निरुतें। ज्ञान ऐसें तयातें। मानूं आम्ही ॥९॥

तत् क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्। स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे शृणु ॥३॥

तरि क्षेत्र येणें नांवें। हें शरीर जेणें भावें। म्हणितलें तें आघवें। सांगों आतां ॥१०॥ हें क्षेत्र कां
म्हणिजे। कैसें कें हें उपजे। कवणकवणीं वाढविजे। विकारी एथ ॥११॥ हें औट हात मोटकें। कीं
केवढें पां केतुकें। बरड कीं पिके। कोणाचें हें ॥१२॥ इत्यादि सर्वा। जे जे याचे भावा। ते बोलिजती
सावेवा। अवधान देई ॥१३॥ पै याचि स्थळाकारणें। श्रुति सदा बोबाणे। तर्कु येणेंचि ठिकाणें। तोंडाळु
केला ॥१४॥ चाळितां हेचि बोली। दर्शनें शेवटा आलीं। तेवींचि नाहीं बुझाविलीं। अझुनि द्रंद्रें
॥१५॥ शास्त्रांचिये सोयरिके। विचळिजे येणेंचि एकें। याचेनि एकवकें। जगासि वादु ॥१६॥ तोंडेसीं
तोंडा न पडे। बोलेंसी बोला न घडे। इया युक्ती बडबडे। त्राय जाहली ॥१७॥ नेणों कोणाचें हें स्थळा
परि कैसें आर्भिलाषाचें बळा। जे घरोघरीं कपाळा। पिटवीत असे ॥१८॥ नास्तिका द्यावया तोंडा
वेदांचें गाढें बंडा। तें देखोनि पाखांडा। आनचि वाजे ॥१९॥ म्हणे तुम्ही निर्मूळा लटिकें हें वाग्जाळा

* ना म्हणसी तरी पोफळा घातलें आहे ॥२०॥ पाखांडाचे कडे। नागवीं लुंचिती मुंडे। नियोजिलीं
 * वितंडें। ताळासि येती ॥२१॥ मृत्युबळाचेनि माजें। हें जाईल वीण काजें। ते देखोनियां व्याजें।
 * निघाले योगी ॥२२॥ मृत्यूनि आधाधिले। तिहीं निरंजन सेविलें। यमदमांचे केले। मेळावे पुरे ॥२३॥
 * येणेंचि क्षेत्राभिमानें। राज्य त्यजिलें ईशानें। गुंति जाणोनि स्मशानें। वासु केला ॥२४॥ ऐसिया पैजा
 * महेशा। पांघुरणें दाही दिशा। लांचकरु म्हणोनि कोळसा। कामु केला ॥२५॥ पै सत्यलोकनाथा।
 * वदनें आलीं बळार्था। तरी तो सर्वथा। जाणेचिना ॥२६॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

* एक म्हणती हें स्थळा जीवाचेंचि समूळा मग प्राण हें कूळा तयाचें एथ ॥२७॥ जे प्राणाचां घरीं।
 * अंगें राबते भाऊ चारी। आणि मना ऐसा आवारी। कुळवाडीकरु ॥२८॥ तयातें इंद्रियबैलांची पेटी।
 * न म्हणे अवसीं पाहाटीं। विषयक्षेत्रीं आटी। काढी भली ॥२९॥ मग विधीची वाफ चुकवी। आणि
 * अन्यायाचें बीं वाफवी। कुकर्माचा करवी। राबु जरी ॥३०॥ तरी तयाचिसारिखें। असंभाड पाप पिके।
 * मग जन्मकोटी दुःखें। भोगी जीवु ॥३१॥ नातरी विधीचिये वाफे। सत्क्रियाबीज आरोपे। तरी
 * जन्मशत मापें। सुखचि मविजे ॥३२॥ तंव आणिक म्हणती हें नव्हे। हें जिवाचेंचि न म्हणावें। आमुतें
 * पुसा आघवें। शेताचें या ॥३३॥ अहो जीवु एथ उखिता। वस्तीकरु वाटे जातां। आणि प्राणु हा

* बलौता। म्हणोनि जागे ॥३४॥ अनादि जे प्रकृती। सांख्य जियेतें गाती। क्षेत्र हे वृत्ती। इयेचि जाणें
 * ॥३५॥ आणि इयेतेंचि आघवा। आथी घरमेळावा। म्हणोनि वाहिवा। घरीं वाहे ॥३६॥ वाहिव्याचिये
 * रहाटी। जे कां मुदल तिघे इये सृष्टी। ते इयेचांचि पोटीं। जहाले गुण ॥३७॥ रजोगुण पेरी। तेतुलें
 * सत्त्व सोंकरी। एकलें तम करी। संवगणी ॥३८॥ रचूनि महतत्त्वाचें खळें। मळी एकें काळुगेनि पोळें।
 * तेथ अव्यक्ताची मिळे। सांज भली ॥३९॥ तंव एकीं मतिवंतीं। या बोलाचिया खंती। म्हणितलें या
 * ज्ञप्ती। अर्वाचीना ॥४०॥ हां हो परतत्त्वाआंतु। कें प्रकृतीची मातु। हा क्षेत्रवृत्तांतु। उगें आइका
 * ॥४१॥ शून्यसेज साळिये। सुलीनतेचिये तुळिये। निद्रा केली होती बळियें। संकल्पें येणें ॥४२॥ तो
 * अवसांत चेइला। उद्यमीं सदैव भला। म्हणोनि ठेवा झाला। इच्छेसवें ॥४३॥ निरालंबींची वाडी।
 * त्रिभुवनायेवढी। हे तयाचिये जोडी। रूपा आली ॥४४॥ महाभूतांचें एकवाट। सैरा वेंटाळूनि भाट।
 * भूतग्रामांचे आघाट। चिरिले चारी ॥४५॥ यावरी आदी। पांचवटेयाची बांधी। बांधली प्रभेदीं।
 * पंचभूतिकीं ॥४६॥ कर्माकर्माचे गुंडे। बांध घातले दोहींकडे। नपुंसकें बरडें। रानें केलीं ॥४७॥ तेथ
 * येरझारेलागीं। जन्ममृत्यूची सुरंगी। सुहाविली निलागी। संकल्पें येणें ॥४८॥ मग अहंकारासि एकलाधी।
 * करुनि जीवितावधी। वहाविलें बुद्धी। चराचर ॥४९॥ यापरी निराळीं। वाढे संकल्पाची डाहाळी।
 * म्हणोनि तो मुळीं। प्रपंचा यया ॥५०॥ इया मतमुक्तकीं। तेथ पडिघायिले आणिकीं। म्हणती हां हो
 * विवेकी। तरी तुम्ही भले ॥५१॥ परतत्त्वाचां गांवीं। संकल्पसेज देखावी। तरी कां पां न मनावी।

* प्रकृति तयांची ॥५२॥ परि हें असो नव्हे। तुम्हीं या न लगावें। आतांचि हें आघवें। सांगिजेल ॥५३॥
 * तरि आकाशीं कवणें। केलीं मेघाचीं भरणें। अंतरिक्षीं तारांगणें। धरी कवण ॥५४॥ गगनाचा तडवा।
 * कोणें वोढिला केधवां। वारा हिंडतु असावा। हें कवणाचें मत ॥५५॥ रोमां कवण पेरी। कोण समुद्र
 * भरी। पर्जन्याचिया करी। धारा कवण ॥५६॥ तैसें क्षेत्र हें स्वभावे। हे वृत्ती कवणाची नव्हे। हें वाहे
 * तया फावे। येरां तुटे ॥५७॥ तंव आणिकें एकें। क्षोभें म्हणितलें निकें। तरि भोगिजे एकें। काळें केवीं
 * ॥५८॥ हें जाणों मृत्यू रागिता। सिंहाडयाचा दरकुटा। परी काय वांजटा। पूरीजत असे ॥५९॥ तरि
 * याचा मारु। देखताति आर्निवारु। परी स्वमतीं भरु। आर्भिमानियां ॥६०॥ महाकल्पापरौती। कव
 * घालूनि अवचितीं। सत्यलोकभद्रजाती। आंगीं वाजे ॥६१॥ लोकपाळ नीच नवे। दिग्गज मेळावे।
 * स्वर्गींचिये आडवे। रिगोनि मोडी ॥६२॥ येरें याचेनि अंगवातें। जन्ममृत्यूचिये गर्ते। निर्जिवें होऊनि
 * भ्रमतें। जीवमृगें ॥६३॥ न्याहाळा पां केव्हडा। पसरलासे चवडा। जो करुनियां माजिवडा। आकारगजु
 * ॥६४॥ म्हणोनि काळाची सत्ता। हा बोलु निरुत्ता। ऐसे वाद पांडुसुता। क्षेत्रालागीं ॥६५॥ हे बहु
 * उखिविखी। ऋषीं केली नैमिषीं। पुराणें इयेविषीं। मतपत्रिका ॥६६॥ अनुष्टुभादि छंदें। प्रबंधीं जियें
 * विविधें। तें पत्रावलंबन मदें। करिताति अझुनी ॥६७॥ वेदींचें बृहत्सामसूत्र। देखणेपणें पवित्र। परी
 * तयाही हें क्षेत्र। नेणवेचि ॥६८॥ आणीक आणीकींही बहुतीं। महाकवीं हेतुमंतीं। ययालागीं मती।

* वेंचिलिया ॥६९॥ परी ऐसें हें एवढें। कीं अमुकेयाचेंचि फुडें। हें कोणाही वरपडे। होयचिना ॥७०॥
 * आतां यावरी जैसें। क्षेत्र हें असे। तुज सांगों तैसें। सांघतु गा ॥७१॥

* महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्चचेन्द्रियगोचराः ॥५॥

* इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः। एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

* तरि महाभूतपंचकु। आणि अहंकारु एकु। बुद्धि अव्यक्त दशकु। इंद्रियांचा ॥७२॥ आणीकही
 * एकु। विषयांचा दशकु। सुख दुःख द्वेषु। संघात इच्छा ॥७३॥ आणि चेतना धृती। एवं क्षेत्रव्यक्ती।
 * सांगितली तुजप्रती। आघवीचि ॥७४॥ आतां महाभूतें कवणें। कवण विषयो कैसीं करणें। हें
 * वेगळालेपणें। एकैक सांगों ॥७५॥ तरी पृथ्वी आप तेज। वायु व्योम इयें तुज। सांगितलीं बुझ।
 * महाभूतें पांचें ॥७६॥ आणि जागतिये दशे। स्वप्न लपालें असे। नातरी अंवसे। चंद्र गूढ ॥७७॥ नाना
 * अप्रौढबाळकीं। तारुण्य राहे थोकीं। कां न फुलतां कळिकीं। आमोदु जैसा ॥७८॥ किंबहुना काष्ठीं।
 * वन्हि जेवीं किरीटी। तेवीं प्रकृतिचां पोटीं। गोप्यु जो असे ॥७९॥ जैसा ज्वरु धातुगतु। अपथ्याचें
 * मिष पहातु। मग जालिया आंतु। बाहेरी व्यापी ॥८०॥ तैसी पांचांही गांठी पडे। जें देहाकारु उघडे।
 * तें नाचवी चहूंकडे। तो अहंकारु गा ॥८१॥ नवल अहंकाराची गोठी। विशेषें न लगे अज्ञानापाठीं।
 * सज्ञानाचे झोंबे कंठी। नाना संकटीं नाचवी ॥८२॥ आतां बुद्धि जे म्हणिजे। ते ऐसां चिन्हीं जाणिजे।
 * बोलिलें यदुराजें। तें आइकें सांगों ॥८३॥ तरी कंदर्पाचेनि बळें। इंद्रियें वृत्तीचेनि मेळे। विभांडूनि येती

* पाळे। विषयांचे ॥८४॥ तो सुखदुःखांचा नागोवा। जेथ उमाणों लागे जीवा। तेथ दोहींसीही बरवा। *
 * पाडु जे धरी ॥८५॥ हें सुख हें दुःख। हें पुण्य हें दोष। कां हें मैळ हें चोख। ऐसें निवडी ॥८६॥ जिये *
 * अधमोत्तम सुझे। जिये सानें थोर बुझे। जिया दिठी पारखिजे। विषो जीवें ॥८७॥ जे तेजतत्त्वाची *
 * आदी। जे सत्त्वगुणाची वृद्धी। जे आत्मया जीवाची संधी। वसवीत असे ॥८८॥ अर्जुना ते गा जाणा। *
 * बुद्धि तूं संपूर्ण। आतां आइकें वोळखण। अव्यक्ताची ॥८९॥ पै सांख्यांचां सिद्धांतीं। प्रकृती जे *
 * महामती। तेचि एथें प्रस्तुतीं। अव्यक्त गा ॥९०॥ आणि सांख्ययोगमते। प्रकृती परिसविली तूतें। *
 * ऐसी दोहीं परी जेथें। विवंचिली ॥९१॥ तेथ दुजी जे जीवदशा। तिये नांव विरेशा। येथें अव्यक्त *
 * ऐसा। पर्यावो हा ॥९२॥ तन्ही पाहालया रजनी। तारा लोपती गगनीं। कां हारपे अस्तमानीं। भूतक्रिया *
 * ॥९३॥ नातरी देहो गेलिया पाठीं। देहादिक किरीटी। उपाधि लपे पोटीं। कृतकर्माचां ॥९४॥ कां *
 * बीजमुद्रेआंतु। थोके तरु समस्तु। कां वस्त्रपण तंतु। दशे राहे ॥९५॥ तैसें सांडोनियां स्थूलधर्म। *
 * महाभूतें भूतग्राम। लया जाती सूक्ष्म। होऊनि जेथें ॥९६॥ अर्जुना तया नांवें। अव्यक्त हें जाणावें। *
 * आतां आइकें आघवे। इंद्रियभेद ॥९७॥ तरि श्रवण नयन। त्वचा घ्राण रसन। इयें जाणें ज्ञान। करणें *
 * पांचें ॥९८॥ इये तत्त्वमेळापंकीं। सुखदुःखाची उखिविखी। बुद्धि करिते मुखीं। पांचे इहीं ॥९९॥ मग *
 * वाचा आणि करा चरण आणि अधोद्वारा पायु हे प्रकार। पांच आणिक ॥१००॥ कर्मेंद्रियें म्हणिपती। *

* तीं इयें जाणिजती। आइकें कैवल्यपती। सांगतसे ॥११॥ पै प्राणाची अंतौरी। क्रियाशक्ति जे शरीरीं। *
 * तियेचि रिगिनिगी द्वारीं। पांचें इहीं ॥१२॥ एवं दाहाही करणें। सांगितलीं देवो म्हणे। परिस आतां *
 * फुडेपणें। मन तें ऐसें ॥१३॥ जें इंद्रियां आणि बुद्धी। माझारिलिये संधी। रजोगुणाचां खांदीं। तरळत *
 * असे ॥१४॥ नीळिमा अंबरीं। कां मृगतृष्णालहरी। तैसें वायांचि फरारी। वावो जाहलें ॥१५॥ आणि *
 * शुक्रशोणिताचा सांधा। मिळतां पांचांचा बांधा। वायुतत्त्व दशधा। एकचि जाहलें ॥१६॥ मग तिहीं *
 * दाहीभागीं। देहधर्माचां खैवंगीं। आर्द्धिष्ठिलें आंगीं। आपुलालां ॥१७॥ तेथ चांचल्य निखळ। एकलें ठेलें *
 * निढाळ। म्हणोनि रजाचें बळ। धरिलें तेणें ॥१८॥ तें बुद्धीसी बाहेरी। अहंकाराच्या उरावरी। ऐसां ठायीं *
 * माझारीं। बळियावलें ॥१९॥ वायां मन हें नांव। एन्हवीं कल्पनाचि सावेव। जयाचेनि संगें जीव। दशा *
 * वस्तू ॥११०॥ जें प्रवृत्तीसि मूळ। कामा जयाचें बळ। जें अखंड सूये छळ। अहंकारासी ॥१११॥ जें *
 * इच्छेतें वाढवी। आशेतें चढवी। जें पाठी पुरवी। भयासि गा ॥११२॥ द्वैत जेथें उठी। आर्विद्या जेणें *
 * लाठी। जें इंद्रियातें लोटी। विषयांमाजी ॥११३॥ संकल्पें सृष्टी घडी। सवेंचि विकल्पूनि मोडी। *
 * मनोरथांचिया उतरंडी। उतरी रची ॥११४॥ जें भुलीचें कुहर। वायुतत्त्वाचें अंतर। बुद्धीचें द्वारा। *
 * झांकविलें जेणें ॥११५॥ तें गा किरीटी मन। या बोला नाहीं आन। आतां विषयाभिधान। भेदु आइकें *
 * ॥११६॥ तरी स्पर्श आणि शब्द। रूप रस गंध। हा विषयो पंचविधु। ज्ञानेंद्रियांचा ॥११७॥ एहीचि पांचे *
 * द्वारीं। ज्ञानासि धांव बाहेरी। जैसा कां हिरवे चारीं। भांबावे पशु ॥११८॥ मग स्वर वर्ण विसर्गु। अथवा *

* स्वीकार त्यागु। संक्रमण उत्सर्गु। विष्णूत्राचा ॥१९॥ हे कर्मद्रियांचे पांच। विषय गा साच। जे बांधोनियां *
 * माच। क्रिया धांवे ॥१२०॥ ऐसे हे दाहीं। विषय इये देहीं। आतां इच्छा तेही। सांगिजेल ॥२१॥ तरि *
 * भूतलें आठवे। कां बोलें कानु झांकवे। ऐसियावरि चेतवे। जे गा वृत्ती ॥२२॥ इंद्रियाविषयांचिये भेटी। *
 * सरसीच वेगें उठी। कामाची बाहुटी। धरुनियां ॥२३॥ जियेचेनि उठिलेपणें। मना सेंध धांवणें। न *
 * रिगावें तेथ करणें। तोंडें सुती ॥२४॥ जिये वृत्तीचिया आवडी। बुद्धी होय वेडी। विषयां जिया गोडी। *
 * ते गा इच्छा ॥२५॥ आणि इच्छिलिया सांगडें। इंद्रियां आमिष न जोडे। तेथ जोडे ऐसा जो डावो *
 * पडे। तोचि द्वेषु ॥२६॥ आतां यावरी सुखा। तें एवंविध देखा। जेणें एकेंचि अशेष। विसरे जीवु ॥२७॥ *
 * मना वाचे काये। जें आपुली आण वाये। देहस्मृतीची त्राये। मोडित जें ये ॥२८॥ जयाचेनि जालेपणें। *
 * पांगुळा होईजे प्राणें। सात्त्विकासी दुणें। वरीही लाभु ॥२९॥ कां आघवियाचि इंद्रियवृत्ती। हृदयाचां *
 * एकांतीं। थापटूनि सुषुप्ती। आणी जें गा ॥१३०॥ किंबहुना सोये। जीव आत्मयाची लाहे। तेथ जें *
 * होये। तया नाम सुख ॥३१॥ आणि ऐसी हे अवस्था। न जोडतां पार्था। जीजे तेंचि सर्वथा। दुःख *
 * जाणें ॥३२॥ तें मनोरथसंगें नव्हे। एन्हवीं सिद्धि गेलेंचि आहे। हे दोनीचि उपाये। सुखदुःखासी *
 * ॥३३॥ आतां असंगा साक्षिभूता। देहीं चैतन्याची जे सत्ता। तिये नांव पांडुसुता। चेतना येथें ॥३४॥ *
 * जे नखौनि केशवरी। उभी जागे शरीरीं। जे तिहीं अवस्थांतरिं। पालटेना ॥३५॥ मनबुद्ध्यादि *

* आघवीं। जियेचेनि टवटवी। प्रकृतिवनमाधवी। सदांचि जे ॥३६॥ जडाजडीं अंशीं। राहाटे जे *
 * सरिसी। ते चेतना गा तुजसीं। लटिकें नाहीं ॥३७॥ पै रावो परिवारु नेणे। आज्ञाचि परचक्र जिणे। *
 * कां चंद्राचेनि पूर्णपणें। सिंधू भरती ॥३८॥ नाना भ्रामकाचें सन्निधान। लोहो करी सचेतना कां *
 * सूर्यसंगु जना। चेष्टवी गा ॥३९॥ अगा मुखमेळेंविण। पिलियाचें पोषण। करी निरीक्षण। कूर्मी जेवीं *
 * ॥१४०॥ पार्था तियापरी। आत्मसंगती इये शरीरीं। सजीवत्वाचा करी। उपेगु जडा ॥४१॥ मग *
 * तियेतें चेतना। म्हणिपे पै अर्जुना। आतां धृतिविवंचना। भेदु आइक ॥४२॥ तरी तत्त्वां परस्परें। *
 * उघड जातिस्वभाववैरें। नव्हे पृथ्वीतें नीरें। न नाशिजे ॥४३॥ नीरातें आटी तेजा। तेजा वायूसिं जुंझा। *
 * आणि गगन तंव सहजा। वायू भक्षी ॥४४॥ तेवींचि कोणेही वेळे। आपण कायिसयाही न मिळे। आंत *
 * रिगोनि वेगळें। आकाश हें ॥४५॥ ऐसीं पांचही भूतें। न साहती एकमेकांतें। कीं तियेंही ऐक्यातें। *
 * देहासी येती ॥४६॥ द्वंद्वाची उखिविखी। सोडूनि वसती एकीं। एकेकातें पोखी। निजगुणें गा ॥४७॥ *
 * ऐसें न मिळे तयां साजणें। चळे धैर्यें जेणें। तयां नांव म्हणें। धृती मी गा ॥४८॥ आणि जीवेंसी पांडवा। *
 * या छत्तिसांचा मेळावा। तो हा एथ जाणावा। संघातु पै गा ॥४९॥ एवं छत्तीसही भेद। सांगितले तुज *
 * विशद। यया येतुलेयातें प्रसिद्ध। क्षेत्र म्हणिजे ॥१५०॥ रथांगांचा मेळावा। जेवीं रथु म्हणिजे पांडवा। *
 * कां अधोर्ध्व अवेवां। नांव देहो ॥५१॥ करीतुरंगसमाजें। सेना नाम निफजे। कां वाक्यें म्हणिजती *
 * पुंजे। अक्षरांचे ॥५२॥ कां जळधरांचा मेळा। वाच्य होय आभाळा। नाना लोकां सकळां। नाम जग *

* ॥५३॥ कां स्नेहसूत्रवन्ही। मेळू एके स्थानीं। धरिजे तो जनीं। दीपु होय ॥५४॥ तैसीं छत्तीसही इयें *
 * तत्त्वं। मिळती जेणें एकत्वं। तेणें समूहपरत्वं। क्षेत्र म्हणिपे ॥५५॥ आणि वाहतेनि भौतिकें। पापपुण्य *
 * येथें पिके। म्हणोनि आम्ही कौतुकें। क्षेत्र म्हणों ॥५६॥ एकाचेनि मते। देह म्हणती ययातें। परि असो *
 * हें अनंतें। नामें यया ॥५७॥ पै परतत्त्वाअरौतें। आणि स्थावरां आंतौतें। जें कांहीं होतें जातें। क्षेत्रचि *
 * हें ॥५८॥ परि सुरनरउरगीं। घडत आहे योनिविभागीं। तें गुणकर्मसंगीं। पडिलेंसातें ॥५९॥ हेंचि *
 * गुणविवंचना। पुढां म्हणिपैल अर्जुना। प्रस्तुत आतां ज्ञाना। रूप दावूं ॥६०॥ क्षेत्र तंव सविस्तर। *
 * सांगितलें सविकार। म्हणोनि आतां उदार। ज्ञान आइक ॥६१॥ जया ज्ञानालागीं। गगन गिळिताती *
 * योगी। स्वर्गाची आडवंगी। उमरडोनि ॥६२॥ न करिती सिद्धीची चाड। न धरिती ऋद्धीची भीड। *
 * योगाऐसें दुवाड। हेळसिती ॥६३॥ तपोदुर्गे वोलांडिता। क्रतुकोटि वोवांडिता। उलथूनि सांडिता। *
 * कर्मवल्ली ॥६४॥ नाना भजनमार्गीं। धांवत उघडां आंगीं। एक रिगताति सुरंगी। सुषुम्नेचिये ॥६५॥ *
 * ऐसी जिये ज्ञानीं। मुनीश्वरांसी उतान्ही। वेदतरुचां पानोवानीं। हिंडताती ॥६६॥ देईल गुरुसेवा। इया *
 * बुद्धी पांडवा। जन्माचा सांडोवा। टाकित जे ॥६७॥ जया ज्ञानाची रिगवणी। आर्विद्ये उणें आणी। *
 * जीवाआत्मया बुझावणी। मांडूनि दे ॥६८॥ जें इंद्रियांचें द्वारें आडी। प्रवृत्तीचे पाय मोडी। जें दैन्यचि *
 * फेडी। मानसाचें ॥६९॥ द्वैताचा दुकालु पाहे। साम्याचें सुयाणें होये। जया ज्ञानाची सोये। ऐसें करी *

* ॥७०॥ मदाचा ठावोचि पुसी। जें महामोहातें ग्रासी। नेदी आपपरु ऐसी। भाष उरों ॥७१॥ जें *
 * संसारातें उन्मूळी। संकल्पपंकु पाखाळी। अनावरा वेंटाळी। ज्ञेयातें जें ॥७२॥ जयाचेनि उजाळें। *
 * उघडती बुद्धीचे डोळे। जीवु दोंदावरी लोळे। आनंदाचिया ॥७३॥ ऐसें जें ज्ञान। पवित्रैकनिधान। जेथ *
 * विटाळलें मना। चोख कीजे ॥७४॥ आत्मया जीवबुद्धी। जे लागली होती क्षयव्याधी। ते जयाचिया *
 * सन्निधी। निरुजा करी ॥७५॥ तें आर्निरूप कीं निरूपिजे। ऐकतां बुद्धी आणिजे। वांचूनि डोळां *
 * देखिजे। ऐसें नाहीं ॥७६॥ मग तेंचि इये शरीरीं। जें आपुला प्रभावो करी। तें इंद्रियांचां व्यापारीं। *
 * डोळांहि दिसे ॥७७॥ पै वसंताचें रिगवणें। झाडांचेनि साजेपणें। जाणिजे तेवीं करणें। सांगती ज्ञान *
 * ॥७८॥ अगा वृक्षासि पाताळीं। जळ सांपडे मुळीं। तें शाखांचिये बाहाळीं। बाहेर दिसे ॥७९॥ कां *
 * भूमीचें मार्दवा। सांगे कोंभाची लवलवा। नाना आचार गौरवा। सुकुलीनाचें ॥८०॥ अथवा संभ्रमाचिया *
 * आयती। स्नेहो जैसा ये व्यक्ती। कां दर्शनाचिये प्रशस्ती। पुण्यपुरुष ॥८१॥ नातरी केळीं कापूर *
 * जाहला। जेवीं परिमळें जाणों आला। कां भिंगारीं दीपु ठेविला। बाहेरि फांके ॥८२॥ तैसें हृदयींचेनि *
 * ज्ञानें। जिये देहीं उमटती चिन्हें। तियें सांगों आतां अवधानें। चांगें आइक ॥८३॥

* अमानित्वमदम्भित्वमर्हिसा क्षान्तिरार्जवम्। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

* तरी कवणेही विषयींचें। साम्य होणें न रुचे। संभावितपणाचें। वोडें जया ॥८४॥ आथिलेचि गुण *
 * वानितां। मान्यपणें मानितां। योग्यतेचें येतां। रूप आंगा ॥८५॥ तें गजबजों लागे कैसा। व्याधें रुंधला

* मृगु जैसा। कां बाहीं तरतां वळसां। दाटला जेवीं ॥८६॥ पार्था तेणें पाडें। सन्मानें जो सांकडे।
 * गरिमेतें आंगाकडे। येवोंचि नेदी ॥८७॥ पूज्यता डोळां न देखावी। स्वकीर्ती कानीं नायकावी। हा
 * अमुका ऐसी नोहावी। सेचि लोकां ॥८८॥ तेथ सत्काराची गोठी। कें आदरा देईल भेटी। मरणेंसीं
 * साटी। नमस्कारितां ॥८९॥ वाचस्पतीचेनि पाडें। सर्वज्ञता तरी जोडे। परि वेडिवेमार्जीं दडे। महिमेभेणें
 * ॥९०॥ चातुर्य लपवी। महत्त्व हारवी। पिसेपण मिरवी। आवडोनि ॥९१॥ लौकिकाचा उद्वेगु।
 * शास्त्रांवरि उबगु। उगेपणीं चांगु। आथी भरु ॥९२॥ जगें अवज्ञाचि करावी। संबंधीं सोयचि न धरावी।
 * ऐसी ऐसी जीवीं। चाड बहु ॥९३॥ तळोटेपण बाणे। आंगीं हिणावो खेवणें। तें तेंचि करणें। बहुतकरुनी
 * ॥९४॥ हा जीतु ना नोहे। लोक कल्पी येणें भावें। तैसें जिणें होआवें। ऐसी आशा ॥९५॥ पै चालतु
 * कां नोहे। कीं वारेनि जातु आहे। जना ऐसा भ्रमु जाये। तैसें होइजे ॥९६॥ माझें असतेपण लोपो।
 * नांवरूप हारपो। मज झणें वासिपो। भूतजात ॥९७॥ ऐसी जयाचीं नवसियें। जो नित्य एकांता जातु
 * जाये। नांवेचि जो जिये। विजनाचेनि ॥९८॥ वायू आणि तया पडे। गगनेसीं बोलों आवडे। जीवें प्राणें
 * झाडें। पढियंतीं जया ॥९९॥ किंबहुना ऐसीं। चिन्हें जया देखसी। जाण तया ज्ञानेंसीं। शेज जाहली
 * ॥१००॥ पै अमानित्व पुरुषीं। तें जाणावें इहीं मिषीं। आतां अदंभाचिया वोळखिसी। सौरसु देवों
 * ॥१०१॥ तरि अदंभित्व ऐसें। लोभियाचें मन जैसें। जीवु जावो परि नुमसे। ठेविला ठावो ॥१०२॥ तयापरी

* किरीटी। पडिलाही प्राणसंकटीं। परि सुकृत न प्रकटी। आंगें बोलें ॥३॥ खडाणे आला पान्हा। पळवी
 * जेवीं अर्जुना। कां राहे पण्यांगना। वडिलपणें ॥४॥ आढ्यु आतुडे आडवीं। मग आढ्यता हारवी।
 * नातरी कुळवधू लपवी। अवेवांतें ॥५॥ नाना कृषीवळु आपुलें। पांघुरवी पेरिलें। तैसें झांकी निपजलें।
 * दानपुण्य ॥६॥ वरिवरी देह न पूजी। लोकांतें न रंजी। स्वधर्मु वाग्ध्वजीं। बांधों नेणे ॥७॥ परोपकारु
 * न बोले। न मिरवी अभ्यासिलें। न शके विकू जोडलें। स्फीतीसाठीं ॥८॥ अंगभोगांकडे। पाहातां
 * कृपणु आवडे। एन्हवीं धर्मविषयीं थोडें। बहु न म्हणे ॥९॥ घरीं दिसे सांकडा। देहींची आयती रोडा।
 * परी दानीं जया होडा। सुरतरुसीं ॥१०॥ किंबहुना स्वधर्मी थोरु। अवसरीं उदारु। आत्मचर्चे
 * चतुरु। एन्हवीं वेडा ॥११॥ केळींचें दळवाडें। हळू पोकळ आवडे। परि फळोनियां गाडें। रसाळ जैसें
 * ॥१२॥ कां मेघाचें आंग झील। दिसे वारेनि जैसें जाईल। परि वर्षती नवल। घनवट तें ॥१३॥ तैसा
 * जो पूर्णपणीं। पाहतां धाती आयणी। एन्हवीं तरी वाणी। तोचि ठावो ॥१४॥ हें असो या चिन्हांचा।
 * नटनाचु ठायीं जयाचां। जाण ज्ञान तयाचिया। हाता चढलें ॥१५॥ पै गा अदंभपण। म्हणितलें तें हें
 * जाण। आतां आईक खूण। आर्हिसेची ॥१६॥ तरी आर्हिंसा बहुतीं परी। बोलिली असे अवधारीं।
 * आपुलालां मतांतरीं। निरूपितां ॥१७॥ परि ते ऐसी देखा। जैशा खांडुनियां शाखा। मग तयाचिया
 * बुडुखा। कुंप कीजे ॥१८॥ कां बाहु तोडोनि विकिजे। मग भुकेची पीडा राखिजे। नाना देऊळ मोडूनि
 * कीजे। पौळी देवा ॥१९॥ तैसी हिंसाचि करुनि आर्हिंसा। निफजविजे हा ऐसा। पै पूर्वमीमांसा। निर्णों

* केला ॥२२०॥ जे अवृष्टीचेनि उपद्रवें। गादलें विश्व आघवें। म्हणोनि पर्जन्येष्टी करावे। नाना याग *
 * ॥२१॥ तंव तिये इष्टीचां बुडीं। पशुहिंसा रोकडी। मग आर्हिंसेची थडी। केंची दिसे ॥२२॥ पेरिजे *
 * नुसधी हिंसा। तेथ उगवैल काय आर्हिंसा। परि नवल बापा धिंवसा। या याज्ञिकांचा ॥२३॥ आणि *
 * आयुर्वेदुही आघवा। याचि मोहोरा पांडवा। जे जीवाकारणें करावा। जीवघातु ॥२४॥ नाना रोगीं *
 * अहाळीं। लोळतीं भूतें देखिलीं। ते हिंसा निवारावया केली। चिकित्सा कां ॥२५॥ तंव ते चिकित्से *
 * पहिलें। एकाचे कंद खणविले। एका उपडविलें। समूळीं सपत्रीं ॥२६॥ एकें आड मोडविली। अजंगमाची *
 * खाल काढविली। एकें गर्भी उकडविली। पुटामार्जी ॥२७॥ अजातशत्रु तरुवरां। सर्वांगीं देवविलिया *
 * शिरा। ऐसे जीव घेऊनि धनुर्धरा। कोरडे केले ॥२८॥ आणि जंगमाही हात। लाऊनि काढिलें पित्त। *
 * मग राखिले शिणत। आणिक जीव ॥२९॥ अहो वसतीं धवळारें। मोडूनि केले देऊळ देव्हारे। *
 * नागौनि वेव्हारें। गवादी घातली ॥३०॥ मस्तक पांगुरविलें। तंव तळवटीं उघडें पडलें। घर मोडोनि *
 * केले। मांडव पुढें ॥३१॥ नाना पांगुरणें। जाळूनि जैसें तापणें। जालें आंगधुणें। कुंजराचें ॥३२॥ बैल *
 * विकूनि गोठा। पुंसा लावोनि गांठा। इया करणी कीं चेष्टा। काई हंसों ॥३३॥ एकीं धर्माचिया वाहणी। *
 * गाळूं आदरिलें पाणी। तंव गाळितया आहाळणीं। जीव मेले ॥३४॥ एक न पचितीचि कणा। इये हिंसेचे *
 * भेण। तेथ कदर्थले प्राण। हेचि हिंसा ॥३५॥ एवं हिंसाचि आर्हिंसा। कर्मकांडीं हा ऐसा। सिद्धांतु *

* सुमनसा। वोळखें तूं ॥३६॥ पहिलें आर्हिंसेचें नांव। आम्हीं केलें जंव। तव स्फूर्ति बांधली हांव। इये *
 * मती ॥३७॥ तरि कैसेनि ययातें गाळावें। म्हणोनि पडिलें बोलावें। तेवींचि तुवांही जाणावें। ऐसा भावो *
 * ॥३८॥ बहुतकरुनि किरीटी। हाचि विषयो इये गोष्टी। एन्हवीं कां आडवाटीं। धांविजेल ॥३९॥ *
 * आणि स्वमताचिया निर्धार। लागोनियां धनुर्धरा। प्राप्तां मतांतरां। निर्वेचु कीजे ॥२४०॥ ऐसी हे *
 * अवधारीं। निरूपिती परी। आतां ययावरी। मुख्य जें गा ॥४१॥ तें स्वमत बोलिजेला। आर्हिंसे रूप *
 * किजेल। जेणें उठलिया आंतुला। ज्ञान दिसे ॥४२॥ परि तें आर्धिष्ठिलेनि आंगें। जाणिजे आचरतेनि *
 * बगें। जैसी कसवटी सांगे। वानियातें ॥४३॥ तैसें ज्ञानामनाचिये भेटी। सरिसेंचि आर्हिंसेचे बिंब उठी। *
 * तेंचि ऐसें किरीटी। परिस आतां ॥४४॥ तरि तरंगु नोलांडितु। लहरी पायें न फोडितु। सांचलु न *
 * मोडितु। पाणियाचा ॥४५॥ वेगें आणि लेसा। दिठी घालूनि आंविसा। जळीं बकु जैसा। पाऊल सुये *
 * ॥४६॥ कां कमळावरी भ्रमरा। पाय ठेविती हळुवारा। कुचुंबैल केसरा। इया शंका ॥४७॥ तैसें परमाणु *
 * पांगुंतले। जाणूनि जीव सानुले। कारुण्यामार्जी पाउलें। लपवूनि चाले ॥४८॥ ते वाट कृपेची करितु। *
 * ते दिशाचि स्नेहा भरितु। जीवातळीं आंथरितु। आपुला जीव ॥४९॥ ऐसिया जतना। चालणें जया *
 * अर्जुना। हें आर्निर्वाच्य परिमाणा। पुरिजेना ॥२५०॥ पै मोहाचेनि सांगडें। लासी पिलें धरी तोंडें। तेथ *
 * दांतांचे आगरडे। लागती जैसे ॥५१॥ कां स्नेहाळु माये। तान्हयाची वास पाहे। तिये दिठी आहे। *
 * हळुवार जें ॥५२॥ नाना कमळदळें। डोलविजती ढाळें। तो जेणें पाडें बुबुळें। वारा घेपे ॥५३॥ तैसेनि *

* मार्दवें पाया। भूमीवरी न्यसीतु जाया। लागती तेथ होया। जनां सुख ॥५४॥ ऐसिया लघिमा चालतां। *
 * कृमिकीटक पांडुसुता। देखे तरि माघौता। हळूचि निघे ॥५५॥ म्हणे पावो धडफडील। तरि स्वामीची *
 * निद्रा मोडैल। रचलेपणा पडैल। झोती हन ॥५६॥ इया काकुळती। वाहणी घे माघौती। कोणेही *
 * व्यक्ती। न वचे वरी ॥५७॥ जीवाचेनि नांवें। तृणातेंही नोलांडवे। मग न लेखितां जावें। हें कें गोठी *
 * ॥५८॥ मुंगिये मेरु नोलांडवे। मशका सिंधु न तरवे। तैसा भेटलियां न करवे। आर्तिक्रमु ॥५९॥ ऐसी *
 * जयाची चाली। कृपाफळीं फळा आली। देखसी जियाली। दया वाचे ॥६०॥ स्वयें श्वसणेंचि तें *
 * सुकुमार। मुख मोहाचें माहेर। माधुर्या जाहले अंकुर। दशन तैसे ॥६१॥ पुढां स्नेह पाझरे। मागां *
 * चालती अक्षरें। शब्द पाठीं अवतरे। कृपा आधीं ॥६२॥ तंव बोलणेंचि नाहीं। बोलों म्हणे जरी कांहीं। *
 * तरि बोल कोणाही। खुपेल कां ॥६३॥ बोलतां आर्धिकुही निघे। तरि कोणहाही वर्मी न लगे। *
 * कोणहासि न रिघे। शंका मनीं ॥६४॥ मांडिली गोठी हन मोडैल। वासिपैल कोणी उडैल। आइकोनिचि *
 * वोवांडिल। कोणही जरी ॥६५॥ तरि दुवाळी कोणा न व्हावी। कवणाची भंवई नुचलावी। ऐसा भावो *
 * जीवीं। म्हणोनि उगा ॥६६॥ मग प्रार्थिला विपायें। जरि लोभें बोलों जाये। तरि परिसे तया होये। *
 * मायबापु ॥६७॥ कां नादब्रह्मचि मुसे आलें। कीं गंगापय असललें। पतिव्रते आलें। वार्धक्य कां *
 * ॥६८॥ तैसें साच आणि मवाळा। मितलें परि सरळा। बोल जैसे कल्लोळा। अमृताचें ॥६९॥ उरोधु *

* वादुबळु। प्राणुपापढाळु। उपहासु चाळु। वर्मस्पर्शु ॥७०॥ आटु वेगु विंदाणु। आशा शंका प्रतारणु। *
 * हे संन्यसिले अवगुणु। जिया वाचा ॥७१॥ आणि तयाचि परी किरीटी। थाउ जयाचिये दिठी। *
 * सांडिलिया भ्रूकूटी। मोकळिया ॥७२॥ भूतीं वस्तु आहे। तिये रूपों शके विपायें। म्हणोनि वास न *
 * पाहे। बहुतकरुनि ॥७३॥ ऐसाही कोणे एके वेळे। आंतुली कृपेचेनि बळें। उघडोनियां डोळे। दिठी *
 * घाली ॥७४॥ तरि चंद्रबिंबोनि धारा। निघतां नव्हती गोचरा। परि एकसरें चकोरां। निघती दोंदें *
 * ॥७५॥ तैसें प्राण्यांसि होये। जरी तो वास पाहे। तया अवलोकनाची सोये। कुर्मीही नेणे ॥७६॥ *
 * किंबहुना ऐसी। दिठी जयाची भूतांसी। करही देखसी। तैसेचि ते ॥७७॥ होऊनियां कृतार्थ। राहिले *
 * सिद्धाचे मनोरथा। तैसे जयाचे हात। निर्व्यापार ॥७८॥ अक्षमें आणि संन्यासिलें। कां निरिंधन आणि *
 * विझालें। मुकेनि घेतलें। मौन जैसें ॥७९॥ तयापरी कांहीं। जयां करां करणें नाहीं। जे अकर्तयाचां *
 * ठायीं। बैसों येती ॥८०॥ आसुडैल वारा। नख लागेल अंबरा। इया बुद्धी करां। चळों नेदी ॥८१॥ *
 * तेथ आंगावरिलीं उडवावीं। कां डोळां रिगतें झाडावीं। पशुपक्ष्यां दावावी। त्रासमुद्रा ॥८२॥ इया *
 * केउतिया गोठी। नावडे दंडुकाठी। मग शस्त्राचें किरीटी। बोलणें कें ॥८३॥ लीलाकमळें खेळणें। *
 * पुष्पमाळा झेलणें। न करी म्हणे गोफणें। ऐसें होईल ॥८४॥ हालवती रोमावळी। यालागीं आंग न *
 * कुरवाळी। नखांची गुंडाळी। बोटांवरी ॥८५॥ तंव करणेयाचाचि अभावो। परि ऐसाही पडे ठावो। तरि *
 * हातां हाचि सरावो। जे जोडिजती ॥८६॥ कां नाभिकारा उचलिजे। हातु पडिलिया देइजे। आर्तातें *

* स्पर्शजे। अळुमाळु ॥८७॥ हेंही उपरोधें करणें। तरी आर्तभय हरणें। नेणती चंद्रकिरणें। जिव्हाळा *
 * तो ॥८८॥ पावोनि तो स्पर्शु। मलयानिळु खरपुसु। तेणें मानें पशु। कुरवाळणें ॥८९॥ जे सदा रिते *
 * मोकळे। जैशीं चंदनांगें निसळें। न फळतांही निफळें। होतीचि ना ॥९०॥ आतां असो हें वाग्जाळा *
 * जाणें तें करतळा। सज्जनाचें शीळा। स्वभाव जैसें ॥९१॥ आतां मन तयाचें। सांगों म्हणों जरी साचें। *
 * तरी सांगितले कोणाचे। विलास हे ॥९२॥ काइ शाखा नव्हे तरु। जळेंवीण असे सागरु। तेज आणि *
 * तेजाकारु। आन काई ॥९३॥ अवयव आणि शरीर। हे वेगळाले काइ जर। कीं रसु आणि नीर। सिनीं *
 * आथी ॥९४॥ म्हणोनि हे जे सर्वा। सांगितलें बाह्य भाव। ते मनचि गा सावयव। ऐसें जाणें ॥९५॥ *
 * जें बीज भुईं खोंविलें। तेंचि वरी रुख जाहलें। तैसें इंद्रियद्वारीं फांकलें। अंतरचि ॥९६॥ पै मानसींचि *
 * जरी। आर्हिसेची अवसरी। तरी केंची बाहेरी। वोसंडेल ॥९७॥ आवडे ते वृत्ती किरीटी। आधीं मनौनी *
 * उठी। मग ते वाचे दिठी। करांसि ये ॥९८॥ वांचूनि मनींचि नाहीं। तें वाचेसि उमटेल काई। बीजेंवीण *
 * भुईं। अंकुर असे ॥९९॥ उगमींचि वाळुनि जाये। तें वोधीं कैचें वाहे। जीवु गेलिया आहे। चेष्टा देहीं *
 * ॥१००॥ म्हणोनि मनपण मोडे। तें इंद्रिया आधींचि उबडें। सूत्रधारेवीण साइखडें। वावो जैसें ॥१०१॥ *
 * तैसें मन हें पांडवा। मूळ यया इंद्रियभावां। हेंचि राहटे आघवां। द्वारीं इहीं ॥१०२॥ परि जियें वेळीं जैसें। *
 * जें होऊनि आंतु असे। बाहेरि ये तैसें। व्यापाररूपें ॥१०३॥ यालागीं साचोकारें। मनीं आर्हिंसा थांवे *

* थोरें। पिकली द्रुती आदरें। बोभात निघे ॥१०४॥ म्हणोनि इंद्रियें तेचि संपदा। वेचितांही उदावादा। *
 * आर्हिंसेचा धंदा। करितें आहाती ॥१०५॥ समुद्रीं दाटे भरितें। तें समुद्रचि भरी तरियांतें। तैसें स्वसंपत्ती *
 * चित्तें। इंद्रियां केलें ॥१०६॥ हें बहु असो पंडितु। धरुनि बाळकाचा हातु। वोळी लिही व्यक्तु। आपणचि *
 * ॥१०७॥ तैसें दयालुत्व आपुलें। मनें हातापायां आणिलें। मग तेथ उपजविलें। आर्हिंसेतें ॥१०८॥ याकारणें *
 * किरीटी। इंद्रियांचिया गोठी। मनाचियेचि राहाटी। रूप केलें ॥१०९॥ ऐसा मनें देहें वाचा। सर्व संन्यासु *
 * दंडाचा। जाहला ठायीं जयाचां। देखशील ॥११०॥ तो जाण वेल्हाळा। ज्ञानाचें वेळाउळा। हें असो *
 * निखळा। ज्ञानचि तो ॥१११॥ जे आर्हिंसा कानें ऐकिजे। ग्रंथाधारे निरूपिजे। ते पाहावी हें उपजे। तें *
 * तोचि पाहावा ॥११२॥ ऐसें म्हणितलें देवें। तें बोलें ऐकें सांगावें। परि फांकला हें उपसाहावें। तुम्हीं मज *
 * ॥११३॥ म्हणाल हिरवे चारीं गुरुं। विसरे मागील मोहर धरुं। कां वारेलगें पांखिरुं। गगनीं भरे ॥११४॥ *
 * तैसिया प्रेमाचिया स्फूर्तीं। फावलिया रसवृत्ती। वाहविला मती। आकळेना ॥११५॥ तरि तैसें नोहे *
 * अवधारा। कारण आहे विस्तारा। एन्हवी पद तरी अक्षरां। तिहींचेंचि ॥११६॥ आर्हिंसा म्हणतां थोडी। *
 * परि तेचि होय जी उघडी। जें लोटिजती कोडी। मतांचिया ॥११७॥ एन्हवीं प्राप्ते मतांतरे। थातंबूनि *
 * आंगभरें। बोलिजेल तें न सरे। तुम्हांपाशीं ॥११८॥ रत्नपारख्यांचां गांवीं। जाईल गंडकी तरि *
 * सोडावी। काश्मीरीं न करावी। मिडगणे जे ॥११९॥ काइसा वासु कापुरा। मंद जेथ अवधारा। पिठाचा *
 * विकरा। तिये सातें ॥१२०॥ म्हणोनि इये सभे। बोलकेपणाचेनि क्षोभें। लागसर न लभे। बोला प्रभु *

* ॥२१॥ सामान्या आणि विशेषा। सकळे कीजेल देखा। तरी कानाचेया मुखा। कडे नेनाल ना तुम्ही *
 * ॥२२॥ शंकेचेनि गदळें। जें शुद्ध प्रमेय मैळे। तें मागुतां पाउलीं पळे। अवधान येतें ॥२३॥ कां करुनि *
 * बाबुळियेची बुंथी। जळें जियें ठाती। तयांची वास पाहाती। हंस काई ॥२४॥ कां अभ्रापैलीकडे। येत *
 * चांदिणें कोडें। तें चकोरें चांचुवडें। उचलितीना ॥२५॥ तैसें तुम्ही वास न पाहाला। ग्रंथु नेघा वरि *
 * कोपाला। जरी निर्विवाद नव्हेला। निरुपण ॥२६॥ न बुझावितां मते। न फिटे आक्षेपाचें लागतें। तें *
 * व्याख्यान जी तुमते। जोडूनि नेदी ॥२७॥ आणि माझें तंव आघवें। ग्रथन येणेंचि भावें। जे तुम्हीं *
 * संतीं होआवें। सन्मुख सदा ॥२८॥ एन्हवीं तरी साचोकारें। तुम्ही गीतार्थाचे सोडरे। जाणोनि गीता *
 * जीवसरें। धरिली मियां ॥२९॥ जें आपुलें सर्वस्व द्याला। मग इयेतें सोडवूनि न्याला। म्हणोनि ग्रंथु *
 * नव्हे वोला। साचचि हे ॥३०॥ कां सर्वस्वाचा लोभु धरा। वोलेचा अव्हेरु करा। तरि गीते मज *
 * अवधारा। एकचि गती ॥३१॥ किंबहुना मज। तुमचिया कृपा काज। तियेलागीं व्याजा। ग्रंथाचें केलें *
 * ॥३२॥ तरि तुम्हां रसिकांजोगें। व्याख्यान शोधावें लागे। म्हणूनि मतांगें। बोलों ठेला ॥३३॥ तंव *
 * कथे पसरु जाहला। श्लोकार्थु दूरि गेला। कीजो क्षमा या बोला। अपत्या मज ॥३४॥ आणि *
 * घांसाआंतिल हरळु। फेडितां लागे वेळु। ते दूषण नव्हे खडळु। सांडावा कीं ॥३५॥ कां संवचोरां *
 * चुकवितां। दिवस लागलिया माता। कोपावें कीं जीविता। जिताणें कीजे ॥३६॥ परि यावरील हें *

* नव्हे। तुम्ही साहिलें तेंचि बरवें। आतां अवधारिजो देवें। बोलिलें ऐसें ॥३७॥ म्हणे उन्मेखसुलोचना। *
 * सावध होई अर्जुना। करुं तुज ज्ञाना। वोळखी आतां ॥३८॥ तरि ज्ञान गा तें एथें। वोळख तूं निरुते। *
 * आक्रोशेंवीण जेथें। क्षमा असे ॥३९॥ अगाध सरोवरीं। कमळिणी जियापरी। कां सदैवांचा घरीं। *
 * संपत्ति जैसी ॥४०॥ पार्था तेणें पाडें। क्षमा जयातें वाढे। तेही लक्षे तें फुडें। लक्षण सांगों ॥४१॥ *
 * तरि पढिये तें लेणें। आंगीं भावें जेणें। धरिजे तेवीं साहणें। सर्वचि जया ॥४२॥ त्रिविध मुख्य आघवे। *
 * उपद्रवांचे मेळावे। वरि पडिलिया नव्हे। वांकुडा जो ॥४३॥ अपेक्षित पावें। ते जेणें तोषें मानवे। *
 * अनपेक्षिताही करवे। तोचि मानु ॥४४॥ जो मानापमानातें साहे। सुखदुःख जेथ सामाये। निंदास्तुती *
 * नोहे। दुखंडु जो ॥४५॥ उन्हाळेनि जो न तापे। हिमवंतीं न कांपे। कायसेनिही न वासिपे। पातलेया *
 * ॥४६॥ स्वशिखरांचा भारु। नेणें जैसा मेरु। धरा यज्ञसुकरु। वोझें न म्हणे ॥४७॥ नाना चराचरीं *
 * भूतीं। दाटणी नव्हे क्षिती। तैसा नाना द्वंद्वीं प्राप्तीं। घामेजेना ॥४८॥ घेउनी जळाचे लोट। आलिया *
 * नदीनदांचे संघाट। करी वाड पोट। समुद्र जेवीं ॥४९॥ तैसें जयाचां ठायीं। साहणें कहींचि नाहीं। *
 * आणि साहतु असे ऐसेंही। स्मरण नुरे ॥५०॥ आंगा जें पातलें। तें करुनि घाली आपुलें। तेथ *
 * साहतेनि नवलें। घेपिजेना ॥५१॥ हे अनाक्रोश क्षमा। जयापार्शीं प्रियोत्तमा। जाण तेणें महिमा। *
 * ज्ञानासि गा ॥५२॥ तो पुरुषु पांडवा। ज्ञानाचा वोलावा। आतां परिस आर्जवा। रूप करुं ॥५३॥ *
 * तरि आर्जव तें ऐसें। प्राणाचें सौजन्य जैसें। आवडे त्याही दोषें। एकचि गा ॥५४॥ कां तोंड पाहूनि *

* प्रकाशु। न करी जेवीं चंडांशु। जगा एकुचि अवकाशु। आकाश जैसें ॥५५॥ तैसें जयाचें मना *
 * माणुसाप्रती आन आना नव्हे आणि वर्तना। ऐसें पै तें ॥५६॥ जे जगचि सनोळखा जगेंसीं जुनाट *
 * सोयरिका। आपपर हे भाखा। जाणणें नाहीं ॥५७॥ भलतेणेंसींहि मेळु। पाणिया ऐसा ढाळु। कवणेविखीं *
 * आडळु। नेघे चित्त ॥५८॥ वारियाची धांवा। तैसे सरळ भावा शंका आणि हांवा नाहीं जया ॥५९॥ *
 * मायेपुढें बाळका। रिगतां न पडे आवांका। तैसें मन देतां लोकां। नालोची जो ॥६०॥ फांकलिया *
 * इंदीवरा। परिवारु नाहीं धनुर्धरा। तैसा कोनकोंपरा। नेणे जीव ॥६१॥ चोखाळपण रत्नाचें। रत्नावरी *
 * किरणाचें। तैसे पुढां मन जयाचें। करणें पाठी ॥६२॥ आलोचूं जो नेणे। अनुभवचि जोगावणें। धरी *
 * मोकली अंतःकरणें। नव्हेचि जया ॥६३॥ दिठी नोहे मिणधी। बोलणें नाहीं संदिग्धी। कवणेंसीं *
 * हीनबुद्धी। राहाटीजे ना ॥६४॥ दाहाही इंद्रियें प्रांजळें। निष्प्रपंचें निर्मळें। पांचही पालव मोकळे। *
 * आठही पाहर ॥६५॥ अमृताची धारा। तैसें उजू अंतर। किंबहुना जो माहेरा या चिन्हांचें ॥६६॥ तो *
 * पुरुष सुभटा। आर्जवाचा आंगवटा। जाण तेथेंचि घरटा। ज्ञानें केला ॥६७॥ आतां ययावरी। *
 * गुरुभक्तीची परी। सांगों गा अवधारीं। चतुरनाथा ॥६८॥ आघवियांचि दैवां। जन्मभूमि हे सेवा। जे *
 * ब्रह्म करी जीवा। शोच्यातें ॥६९॥ ते आचार्योपास्ती। प्रकटिजैल तुजप्रती। बैसों दे एकपांती। *
 * अवधानाची ॥७०॥ तरि सकळ जळसमृद्धी। घेऊनि गंगा रिगाली उदधी। कीं श्रुति हे महापदीं। *

* पैठी जाहाली ॥७१॥ नाना वेंटाळूनि जीवितें। गुणागुण उखितें। प्राणनाथा उर्चितें। दिधलें प्रिया *
 * ॥७२॥ तैसें सबाह्य आपुलें। जेणें गुरुकुळीं वोपिलें। आपणपें केलें। भक्तीचें घर ॥७३॥ गुरुगृह *
 * जिये देशीं। तो देशुचि वसे मानसीं। विरहिणी कां जैसी। वल्लभातें ॥७४॥ तियेकडोनि येतसे वारा। *
 * देखोनि धांवे सामोरा। आड पडे म्हणे घरा। बीजें कीजो ॥७५॥ साचा प्रेमाचिया भुली। तया *
 * दिशेसीचि आवडे बोली। जीवु थानापती करुनि घाली। गुरुगृहीं जो ॥७६॥ परि गुरुआज्ञा धरिलें। *
 * देह गांवीं असे एकलें। वांसरुवा लाविलें। दावें जैसें ॥७७॥ म्हणे कें हें बिरडें फिटेल। कें तो स्वामी *
 * भेटेल। युगाहिहूनि वडिला निमिष मानी ॥७८॥ ऐसेया गुरुग्रामींचें आलें। कां स्वयें गुरुंनींच धाडिलें। *
 * तरी गतायुष्या जोडलें। आयुष्य जैसें ॥७९॥ कां सुकतया अंकुरा। वरि पडिलिया पीयूषधारा। नाना *
 * अल्पोदकींचा सागरा। आला मासा ॥८०॥ नातरी रंकें निधान देखिलें। आंधळिया डोळे उघडले। *
 * भणंगाचिया आंगा आलें। इंद्रपद ॥८१॥ तैसें गुरुकुळींचेनि नावें। महासुखें आर्ति थोरावे। जे कोडेंही *
 * पोटाळावे। आकाश कां ॥८२॥ पै गुरुकुळीं ऐसी। आवडी जया देखसी। जाण ज्ञान तयापासीं। *
 * पाइकी करी ॥८३॥ आणि अभ्यंतरिलियेकडे। प्रेमाचेनि पवाडे। श्रीगुरुचें रूपडें। उपासी ध्यानीं *
 * ॥८४॥ हृदयशुद्धीचां आवारीं। आराध्यु तो धुरु करी। मग सर्व भावेंसी परिवारीं। आपण होय ॥८५॥ *
 * कां चैतन्याचिये पोवळी। माजीं आनंदाचां राउळीं। गुरुलिंगा ढाळी। ध्यानामृत ॥८६॥ उदयिजतां *
 * बोधार्का। बुद्धीची डाल सात्विका। भरोनि त्र्यंबका। लाखोली वाहे ॥८७॥ काळशुद्धी त्रिकाळीं। *

* जीवदशाधूप जाळी। ज्ञानदीपें वोंवाळी। निरंतर ॥८८॥ सामरस्याची रससोया। अखंड आर्पितु जाया। *
 * आपण भराडा होय। गुरु तो लिंग ॥८९॥ नातरी जीवाचिये सेजे। गुरु कांतु करुनि भुंजे। ऐसीं *
 * प्रेमाचीं भोजें। बुद्धी वाहे ॥३९०॥ कोणे एके अवसरीं। अनुरागु भरे अंतरीं। कीं तया नांव करी। *
 * क्षीराब्धी ॥९१॥ तेथ ध्येय ध्यान बहु सुखा। तेचि शेषतुली निर्दोखा। वरि जलसेनु देखा। भावी गुरु *
 * ॥९२॥ मग वोळगती पाया। लक्ष्मी आपण होय। गरुड होऊनि उभा राहे। आपणचि ॥९३॥ नाभीं *
 * आपणचि जन्मे। ऐसें गुरुमूर्तिप्रेमें। अनुभवी मनोधर्मे। ध्यानसुख ॥९४॥ एकाधेनि वेळे। गुरु माय *
 * करी भावबळें। मग स्तन्यसुखें लोळे। अंकावरी ॥९५॥ नातरी गा किरीटी। चैतन्यतरुतळवटीं। गुरु *
 * धेनु आपण पाठीं। वत्स होय ॥९६॥ गुरुकृपास्नेहसलिलीं। आपण होय मासोळी। कोणे एके वेळीं। *
 * हेंचि भावी ॥९७॥ गुरुकृपामृताचें वडप। आपण सेवावृत्तीचें होय रोप। ऐसेसे संकल्प। विये मन *
 * ॥९८॥ चक्षुपक्षेवीण। पिलूं होय आपण। कैसे पें अपारपण। आवडीचें ॥९९॥ गुरुतें पक्षिणी करी। *
 * चारा घे चांचूवरी। गुरु तारु धरी। आपण कास ॥४००॥ ऐसें प्रेमाचेनि थावें। ध्यानचि ध्यानातें *
 * प्रसवे। पूर्णसिंधू हेलावे। फुटती जैसे ॥१॥ किंबहुना यापरी। श्रीगुरुमूर्ती अंतरीं। भोगी आतां अवधारीं। *
 * बाह्यसेवा ॥२॥ तरि जीवीं ऐसें आवांके। म्हणे दास्य करीन निकें। जैसे गुरु कौतुके। माग म्हणती *
 * ॥३॥ तैसिया साचा उपास्ती। गोसावी सुप्रसन्न होती। तेथ मी विनंती। ऐसी करीन ॥४॥ म्हणेन *

* तुमचा देवा। परिवारु जो आघवा। तेतुलें रूपें होआवा। मीचि एकु ॥५॥ आणि उपकरतीं आपुलीं। *
 * उपकरणें आथि जेतुलीं। माझीं रूपें तेतुलीं। होआवीं जी ॥६॥ ऐसा मागेन वरु। तेथ हो म्हणती *
 * गुरु। मग तो परिवारु। मीचि होईन ॥७॥ उपकरणजात सकळिका। तेंहि मीचि होईन एकैका। तेव्हां *
 * उपास्तीचें कवतिका। देखिजेल ॥८॥ गुरु बहुतांची माये। परि एकलौति होऊनि ठाये। तैसें करुनि *
 * आण वाये। कृपे तिये ॥९॥ तया अनुरागा वेधु लावीं। एकपत्नीव्रतचि घेववीं। क्षेत्रसंन्यासु करवीं। *
 * लोभाकरवीं ॥४१०॥ चतुर्दिक्षु वारा। न लाहे निघों बाहिरा। तैसा गुरुकृपे पांजिरा। मीचि होईन *
 * ॥११॥ आपुलिया गुणांचीं लेणीं। करीन गुरुसेवे स्वामिणी। हें असो होईन गंवसणी। मीचि भक्ती *
 * ॥१२॥ गुरुस्नेहाचिये वृष्टी। मी पृथ्वी होईन तळवटीं। ऐसिया मनोरथांचिया सृष्टी। अनंता रची *
 * ॥१३॥ म्हणे गुरुचें भुवन। आपण मी होईन। आणि दास होऊनि करीन। दास्य तेथिचें ॥१४॥ *
 * निर्गमागमीं दातारें। जे वोलांडिजती उंबरे। ते मी होईन आणि द्वारें। द्वारपाल ॥१५॥ पाउवा मी *
 * होईन। तियां मीचि लेववीन। छत्र मी आणि करीन। बारीपण ॥१६॥ मी तळ उपरु जाणविता। *
 * चंवरधरु हातुदेता। स्वामीपुढां खोलता। होईन मी ॥१७॥ मीचि होईन सागळा। करुं सुईन गुळळां। *
 * सांडिती तो नेपाळा। पडिघा मीचि ॥१८॥ हडप मी वोळगेन। मीचि उगाळु घेईन। उळिग मी करीन। *
 * आंघोळीचें ॥१९॥ होईन गुरुचें आसन। अळंकार परिधान। चंदनादि होईन। उपचार ते ॥४२०॥ *
 * मीचि होईन सुआरु। वोगरीन उपहारु। आपणपेनि श्रीगुरु। वोंवाळीन ॥२१॥ जे वेळीं देवो आरोगिती। *

* तेव्हां पांतीकरु मीचि पांतीं। मीचि होईन पुढती। देईन विडा ॥२२॥ ताट मी काढीन। सेज मी
 * झाडीन। चरणसंवाहन। करीन मीचि ॥२३॥ सिंहासन होईन आपण। वरि श्रीगुरु करिती आरोहण।
 * होईन पुरेपण। वोळगेचें ॥२४॥ श्रीगुरुचें मन। जया देईल अवधान। ते मी पुढां होईन। चमत्कारु
 * ॥२५॥ तया श्रवणाचां आंगणीं। होईन शब्दांचिया आक्षोणि। परिसु होईन घसणी। आंगाचिया
 * ॥२६॥ श्रीगुरुचे डोळे। अवलोकनें स्नेहाळें। पाहाती तियें सकळें। होईन रूपें ॥२७॥ तिये रसने जो
 * जो रुचेल। तो तो रसु म्यां होईजेल। गंधरूपें कीजेल। घ्राणसेवा ॥२८॥ एवं बाह्यमनोगत। गुरुसेवा
 * समस्त। वेंटाळीन वस्तुजात। होऊनियां ॥२९॥ जंव देह हें असेल। तंव ऐसी वोळगी कीजेल। मग
 * देहातीं नवल। बुद्धि आहे ॥४३०॥ इये शरीरींची माती। मेळवीन तिये क्षिती। जेथ श्रीचरण उभे
 * ठाती। आराध्याचे ॥३१॥ माझा स्वामी कवतिकें। स्पर्शति जियें उदकें। तेथ लया नेईन निकें।
 * आपीं आप ॥३२॥ श्रीगुरु वोंवाळिजती। कां भुवनीं जे उजळिती। तयां दीपांचिया दीप्ती। ठेवीन तेज
 * ॥३३॥ चंवरी हन विंजणा। तेथ लयो करीन प्राणा। मग आगाचा वोळगणा। होईन मी ॥३४॥ जिये
 * जिये अवकाशीं। गुरु असती परिवारेसीं। आकाश लया आकाशीं। नेईन तिये ॥३५॥ परि जीतु मेला
 * न संडीं। निमेषु लोकां न धडीं। ऐसेनि गणाविया कोडी। कल्पांचिया ॥३६॥ येतुलेवरी धिंवसा।
 * जयाचिया मानसा। आणि करुनियांहि तैसा। अपारुचि ॥३७॥ रात्री दिवो नेणे। थोडें बहु न म्हणे।

* म्हणियाचेनि दाटपणें। साजा होय ॥३८॥ तो व्यापारु येणें नावें। गगनाहूनि थोरावे। एकला करी
 * आघवें। एके काळीं ॥३९॥ हृदयवृत्ती पुढां। आंगचि घे दवडा। काज करी होडा। मानसंशीं ॥४४०॥
 * एकादिया आळामाळा। श्रीगुरुचिया खेळा। लोण करी सकळा। जीविताचें ॥४१॥ जो गुरुदास्यें
 * कृशु। जो गुरुप्रेमें सपोषु। गुरुआज्ञे निजवासु। आपणचि जो ॥४२॥ जो गुरुकुळें सुकुलीनु। जो
 * गुरुबंधुसौजन्यें सुजनु। जो गुरुसेवाव्यसनें सव्यसनु। निरंतर ॥४३॥ गुरुसंप्रदायधर्म। ते जयाचे
 * वर्णाश्रम। गुरुपरिचर्या नित्यकर्म। जयाचें गा ॥४४॥ गुरु क्षेत्र गुरु देवता। गुरु माय गुरु पिता। जो
 * गुरुपूजेपरौता। मार्गु नेणे ॥४५॥ श्रीगुरुचें द्वारा। तें जयाचें सर्वस्व सार। गुरुसेवकां सहोदर। प्रेमें भजे
 * ॥४६॥ जयाचें वक्त्र। वाहे गुरुनामाचे मंत्र। गुरुवाक्यावांचूनि शास्त्र। हातीं न शिवे ॥४७॥ शिवतलें
 * गुरुचरणीं। भलतें जें पाणी। तया तीर्थयात्रे आणी। तीर्थें त्रैलोक्यांचीं ॥४८॥ श्रीगुरुचें उशिटें। लाहे
 * जें अवचटें। तें तेणें लाभें विटे। समाधीसी ॥४९॥ कैवल्यसुखासाठीं। परमाणु घे किरीटी। उधळती
 * पायांपाठीं। चालतां जे ॥४५०॥ हें असो सांगों किती। नाहीं पारु गुरुभक्ती। परी गा उत्क्रांतमती।
 * कारण हें ॥५१॥ जया इये भक्तीची चाडा। जया इये विषयींचें कोडा। जो हे सेवेवांचून गोडा न मनी
 * कांहीं ॥५२॥ तो तत्त्वज्ञानाचा ठावो। ज्ञाना तेणेंचि आवो। हें असो तो देवो। ज्ञान भक्तु ॥५३॥ हें
 * जाण पां साचोकारें। तेथ ज्ञान उघडेनि द्वारे। नांदत असे जगा पुरे। इया रीती ॥५४॥ जिये
 * गुरुसेवेविखीं। माझा जीव आर्भिलाखी। म्हणोनि सोयचुकी। बोली केली ॥५५॥ एन्हवीं असतां हातीं

* खुळा। भजनावधानीं आंधळा। परिचर्येलागीं पांगुळा। पासूनि मंदु ॥५६॥ गुरुवर्णनीं मुका। आळशी *
 * पोशिजे फुका। परि मनीं आथी निका। सानुरागु ॥५७॥ तेणेंचि पै कारणें। हें स्थळ पोखणें। पडलें *
 * मज म्हणे। ज्ञानदेवो ॥५८॥ परि तो बोलु उपसाहावा। आणि वोळगे अवसरु देयावा। आतां म्हणेन *
 * जी बरवा। ग्रंथार्थुचि ॥५९॥ परिसा परिसा श्रीकृष्णु। जो भूतभारसहिष्णु। तो बोलतसे विष्णु। पार्थु *
 * एके ॥४६०॥ म्हणे शुचित्व गा ऐसें। जयापार्शीं दिसे। आंग मन जैसें। कापुराचें ॥६१॥ कां रत्नाचें *
 * दळवाडें। तैसें सबाह्य चोखडें। आंत बाहेरि एकें पाडें। सुरु जैसा ॥६२॥ बाहेरीं कर्में क्षाळला। *
 * भितरीं ज्ञानें उजळला। इहीं दोहीं परी आला। पाखाळा एका ॥६३॥ मृत्तिका आणि जळें। बाह्य येणें *
 * मेळें। निर्मळु होय बोलें। वेदाचेनि ॥६४॥ भलतेथ बुद्धी बळी। रजें आरिसा उजळी। सोंदणी फेडी *
 * थिगळी। वस्त्रांचिया ॥६५॥ किंबहुना इयापरी। बाह्य चोख अवधारीं। आणि ज्ञानदीपु अंतरीं। *
 * म्हणौनि शुद्ध ॥६६॥ एहवीं तरी पांडुसुता। आंत शुद्ध नसतां। बाहेरि कर्म तो तत्त्वतां। विटंबु गा *
 * ॥६७॥ मृत जैसा शृंगारिला। गाढव तीर्थी न्हाणिला। कटुदुधिया माखिला। गुळें जैसा ॥६८॥ वोस *
 * गृहीं तोरण बांधिलें। कां उपवासी अन्नं लिंपिलें। कुंकुसेंदुर केलें। कांतहीने ॥६९॥ कळस ढिमाचे *
 * पोकळा। जळो वरीले झळाळा। काय करुं चित्रीं फळा। आंतु शेण ॥४७०॥ तैसें कर्मवरिचिलेकडां। *
 * न सरे थोर मोलें कुडा। नव्हे मदरेचा घडा। पवित्र गंगे ॥७१॥ म्हणौनि अंतरीं ज्ञान व्हावें। मग बाह्य *

* लाभेल स्वभावें। वरि ज्ञानकर्में संभवे। ऐसें कें जोडे ॥७२॥ यालागीं बाह्य विभागु। कर्में धुतला चांगु। *
 * आणि ज्ञानें फेडिला वंगु। अंतरींचा ॥७३॥ तेथ अंतरबाह्य गेलें। निर्मळत्व एक जाहलें। किंबहुना *
 * उरलें। शुचित्वचि ॥७४॥ म्हणौनि सद्भाव जीवगता। बाहेरि दिसती फांकता। ते स्फटिकगृहींचे *
 * डोलता। दीप जैसे ॥७५॥ विकल्प जेणें जेणें उपजे। नाथिली विकृति निपजे। अप्रवृत्तीचीं बीजे। *
 * अंकुर घेती ॥७६॥ तें आइके देखे अथवा भेटे। परि मनीं कांहींचि नुमटे। मेघरंगें न कांटे। व्योम जैसें *
 * ॥७७॥ एहवीं इंद्रियांचेनि मेळें। विषयांवरी तरी लोळे। परि विकाराचेनि विटाळें। लिंपिजेना ॥७८॥ *
 * भेटलेया वाटेवरी। चोखी आणि माहारी। तेथ नातळे तियापरी। राहाटें जाणे ॥७९॥ कां पतिपुत्रांतें *
 * आलिंगी। एकचि ते तरुणांगी। तेथ पुत्रभावाचां आंगीं। न लगेचि कामु ॥४८०॥ तैसें हृदय चोखा। *
 * संकल्पविकल्पीं सनोळखा। कृत्याकृत्य विशेखा। फुडें जाणे ॥८१॥ पाणियें हिरा न भिजे। आधर्णीं *
 * हरळु न शिजे। तैसी विकल्पजातें न लिंपिजे। मनोवृत्ती ॥८२॥ तया नांव शुचित्वपण। पार्था गा *
 * संपूर्ण। हे देखसी तेथ जाण। ज्ञान आहे ॥८३॥ आणि स्थिरता साचें। घर रिगाली जयाचें। तो पुरुष *
 * ज्ञानाचें। आयुष्य गा ॥८४॥ देह तरी वरीलीकडे। आपुलिया परी हिंडे। परि बैसका न मोडे। *
 * मानसींची ॥८५॥ वत्सावरुनि धेनूचें। स्नेह राना न वचे। नव्हती भोग सतियेचे। प्रेमभोग ॥८६॥ *
 * कां लोभिया दूर जाये। परि जीव ठेवाचि ठाये। तैसा देहो चाळितां नव्हे। चळु चित्ता ॥८७॥ जातया *
 * अभ्रासवें। जैसें आकाश न धांवें। भ्रमणचक्रीं न भंवें। ध्रुव जैसा ॥८८॥ पांथिकाचिया येरझारा। सवें *

* पंथु न वचे धनुर्धरा। कां नाहीं जेवीं तरुवरां । येणें जाणें ॥८९॥ तैसा चळणवळणात्मकीं। असोनि *
 * ये पांचभौतिकीं। भूतोर्मी एकी। चळिजेना ॥४९०॥ वाहुटळीचेनि बळें। पृथ्वी जैसी न ढळे। तैसा *
 * उपद्रवउमाळें। न लोटे जो ॥९१॥ दैन्यदुःखीं न तपे। भयशोकीं न कंपे। देहमृत्यु न वासिपे। पातलेनि *
 * ॥९२॥ आर्तिआशापडिभरें। वयव्याधीगजरें। उजू असतां पाठिमोरें। नव्हे चित्त ॥९३॥ निंदा निस्तेज *
 * दंडी। कामलोभा वरपडी। परी रोमा नव्हे वांकुडी। मानसाची ॥९४॥ आकाश हें वोसरो। पृथ्वी वरि *
 * विरो। परी नेणे मोहरों। हृदयवृत्ती ॥९५॥ हाती हाला फुलीं। पासवणा जेवीं न घाली। तैसा नोहोटे *
 * दुर्वाक्यशेलीं। सेलिला सांता ॥९६॥ क्षीरार्णवाचां कल्लोळी। कंपु नाहीं मंदराचळीं। कां आकाश न *
 * जळे जाळीं। वणवियाचां ॥९७॥ तैशा आल्या गेल्या ऊर्मी। नव्हे गजबज मनोधर्मी। किंबहुना धिरु *
 * क्षमी। कल्पांतींही ॥९८॥ पै स्थैर्य ऐसी भाषा बोलिजे जे सविशेष। ते हे दशा गा देखा देखणेया *
 * ॥९९॥ हें स्थैर्य निधडें। जेथ आंगें जीवें जोडे। तें ज्ञानाचें उघडें। निधान साचें ॥१००॥ आणि *
 * इसाळु जैसा घरा। कां दंदिया हतियेरा। न विसंबें भांडारा। बद्धकु जैसा ॥१॥ एकलौतिया बाळका। *
 * वरि पडौनि ठाके अंबिका। मधुविषीं मधुमक्षिका। लोभिणी जैसी ॥२॥ अर्जुना जो यापरी। अंतःकरण *
 * जतन करी। नेदी उभें ठाको द्वारीं। इंद्रियांचां ॥३॥ म्हणे काम बागुल ऐकेल। हे आशा सियारी देखैल। *
 * तरी जीवा टेंकैल। म्हणोनि बिहे ॥४॥ बाहेरी धीट जैसी। दाटुगा पति कळासि। करी टेहणी तैसी। *

* प्रवृत्तीसीं ॥५॥ सचेतनीं वाणेपणें। देहासकट आटणें। संयमावरी करणें। बुझूनि घाली ॥६॥ मनाचां *
 * महाद्वारीं। प्रत्याहाराचिया ठाणांतरीं। जो यम दम शरीरीं। जागवी उभें ॥७॥ आधारीं नाभीं कंठीं। *
 * बंधत्रयाचीं घरटीं। चंद्रसूर्यसंपुटीं। सुये चित्त ॥८॥ समाधीचे शेजेपासीं। बांधोनि घाली ध्यानेंसीं। *
 * चित्त चैतन्यसमरसीं। आंतु रते ॥९॥ अगा अंतःकरणनिग्राहो जो। तो हा हें जाणिजो। हा आथी तेथ *
 * विजयो। ज्ञानाचा पै ॥१०॥ जयाची आज्ञा आपण। शिरीं वाहे अंतःकरण। मनुष्याकारें जाण। *
 * ज्ञानचि तो ॥११॥

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

* आणि विषयांविखीं। वैराग्याची निकी। पुरवणी मानसीं कीं। जिती आथी ॥१२॥ वमिलेया *
 * अन्ना। लाळ न घोंटीं जेवीं रसना। आंग न सूये आलिंगना। प्रेताचिया ॥१३॥ विष खाणें नागवे। *
 * जळत घरीं न रिगवे। व्याघ्रविवरां न वचवे। वस्ती जेवीं ॥१४॥ धडाडीत लोहरसीं। उडी न घालवे *
 * जैसी। न करवे उशी। अजगराची ॥१५॥ अर्जुना तेणें पाडें। जयासी विषयवार्ता नावडे। नेदी *
 * इंद्रियांचेनि तोंडें। कांहींच जावों ॥१६॥ जयाचां मनीं आलस्या देहीं आर्तिकाश्रय। यमदमीं सामरस्या *
 * जयासि गा ॥१७॥ तपोव्रतांचा मेळावा। जयाचां ठायीं पांडवा। युगांत जया गांवा। आंतु येतां *
 * ॥१८॥ बहु योगाभ्यासीं हांवा। विजनाकडे धांवा। न साहे जो नांवा। संघाताचें ॥१९॥ नाराचाचीं *
 * आंथुरणें। पूयपंकीं लोळणें। तैसें लेखी भोगणें। ऐहिकींचें ॥२०॥ स्वर्गातें मानसें। ऐकोनि मानीं ऐसें। *

* कुहिलें पिशित जैसैं। श्वानाचें कां ॥२१॥ तें हें विषयवैराग्या जें आत्मलाभाचें भाग्या। येणें ब्रह्मानंदा
 * योग्या जीव होती ॥२२॥ ऐसा उभयभोगीं त्रासु। देखसी जेथ बहुवसु। तेथ जाण रहिवासु। ज्ञानाचा
 * तूं ॥२३॥ आणि सचाडाचिये परी। इष्टापूर्ते करी। परी केलेपण शरीरीं। वसों नेदी ॥२४॥ वर्णाश्रमपोषके
 * कर्में नित्यनैमित्तिकें। तयांमार्जीं कांहीं न ठके। आचरतां ॥२५॥ परि हें मियां केलें। कीं हें माझेनि
 * जालें। ऐसें नाहीं ठेविलें। वासनेमार्जीं ॥२६॥ जैसैं अवचितपणें। वायूसि सर्वत्र विचरणें। का निरभिमान
 * उदैजणें। सूर्याचें जैसैं ॥२७॥ कां श्रुति स्वभावता बोले। गंगा काजेविण चाले। तैसैं अवष्टंभहीन भलें।
 * वर्तणें जयाचें ॥२८॥ ऋतुकाळीं तरी फळती। परी फळलों हें नेणती। तयां वृक्षांचिये ऐसी वृत्ती। कर्मीं
 * सदा ॥२९॥ एवं मनीं कर्मीं बोलीं। जेथ अहंकारा उखी जाहली। एकावळीची काढिली। दोरी जैसी
 * ॥५३०॥ संबंधेवीण जैसीं। अभ्रें असती आकाशीं। देहीं कर्में तैसीं। जयासि गा ॥३१॥ मद्यपाआंगींचें
 * वस्त्र। लेपाहातीचें शस्त्र। बैलावरी शास्त्र। बांधलें आहे ॥३२॥ तया पाडें देहीं। जया आहे हे सेचि
 * नाहीं। निरहंकारता पाहीं। तया नांव ॥३३॥ हें संपूर्ण जेथें दिसे। तेथेंचि ज्ञान असे। इयेंविषीं
 * अनारिसें। बोलों नये ॥३४॥ आणि जन्ममृत्युदुःखें। व्याधिवाधक्यकलुषें। इयें आंगा न येतां देखे।
 * दुरुनि जो ॥३५॥ साधकु विवसिया। कां उपसर्गु योगिया। पावे उणेयापुरेया। वोथंबा जेवीं ॥३६॥
 * वैर जन्मांतरींचें। सर्पा मनौनि न वचे। तेवीं अतीता जन्माचें। उणें जो वाहे ॥३७॥ डोळां हरळ न

* विरे। घायीं कोत न जिरे। तैसैं काळींचें न विसरे। जन्मदुःख ॥३८॥ म्हणे पुयगर्ते रिगाला। अहा
 * मूत्ररंध्रें निघाला। कटा मियां चाटिला। कुचस्वेदु ॥३९॥ ऐसिऐसियापरी। जन्माचा कांटाळा धरी।
 * म्हणे आतां तें न करीं। जेणें ऐसैं होय ॥५४०॥ हारी उमचावया। जुंवारी जैसा ये डाय। कीं वैरा
 * बापाचेया। पुत्र जचे ॥४१॥ मारिलियाचेनि रागें। पाठीचा जेवीं सूड मागे। तेणें आक्षेपें लागे। जन्मापाठीं
 * ॥४२॥ परि जन्मती ते लाजा। न सांडी जयाचें निज। संभाविता निस्तेजा। न जिरे जेवीं ॥४३॥
 * आणि मृत्यु पुढें आहे। तोचि कल्पांतीं कां पाहे। परि आजीचि होये। सावधु जो ॥४४॥ मार्जीं अथांव
 * म्हणता। थडियेची पांडूसुता। पोहणार आइता। कासे जेवीं ॥४५॥ कां न पवतां रणाचा ठावो।
 * सांभाळिजे जैसा आवो। वोडण सुडजे घावो। न लगतांचि ॥४६॥ पाहेचा पेणा वाटबंधा। तंव
 * आजीचि होइजे सावधा। जीव न निगतां औषधा। धांविजे जेवीं ॥४७॥ येन्हवी ऐसैं घडे। जो जळतां
 * घरीं सांपडे। तो मग न पवाडे। कुहा खणों ॥४८॥ चोंढिये पाथरु गेला। तैसेनि जो बुडाला। तो
 * बोंबेहि सकट निमाला। कोण सांगे ॥४९॥ म्हणोनि समर्थें सि वैरा। जया पडिलें हाडखाइरा। तो जैसा
 * आठही पाहरा। परजूनि असे ॥५०॥ नातरी केळवली नोवरी। कां संन्यासी जियापरी। तैंसा न
 * मरतां जो करी। मृत्युसूचना ॥५१॥ पै गा जो ययापरी। जन्मेंची जन्म निवारी। मरणें मृत्यु मारी।
 * आपण उरे ॥५२॥ तया घरीं ज्ञानाचें। सांकडें नाहीं साचें। जया जन्ममृत्यूचें। हृदयीं शल्य ॥५३॥
 * आणि तयाचिपरी जरा। न टेंकता शरीरा। तारुण्याचिया भरा। मार्जीं देखे ॥५४॥ म्हणे आजिचां

* अवसरीं। पुष्टि जे शरीरीं। ते पाहे होईल काचरी। वाळली जैसी ॥५५॥ निदैव्याचें व्यवसाय। तैसे *
 * ठाकती हातपाय। अमंत्रिया राज्याची परी आहे। बळा यया ॥५६॥ फुलांचिया भोगा-। लागीं प्रेम *
 * टांगा। तें करेयाचा गुडघा। तैसें होईल ॥५७॥ वोढाळाचां खुरीं। आखरु आतें बुरी। ते दशा माझां *
 * शिरीं। पावेल गा ॥५८॥ पद्मदळेंसी इसाळे। भांडताति जे हे डोळे। ते होती पडवळें। पिकलीं जैसी *
 * ॥५९॥ भंवईचीं पडळें। वोमथती सिनसाळे। उरु कुहिजेल जळें। आंसुवांचेनि ॥५६०॥ जैसे *
 * बाभुळीचें खोड। गिरबडुनी जाती सरड। तैसे पिचडीं तोंड। सरकटिजेल ॥६१॥ रांधवणी वोलीपुढें। *
 * पन्हे उन्मादती खातवडे। तैसींचि यें नाकाडें। बिडबिडती ॥६२॥ तांबूल ओंठ राऊं। हांसतां दांत *
 * दाऊं। सनागर मिरऊं। बोल जेणें ॥६३॥ तयाचि पाहे या तोंडा। येईल जळंबटाचा लोंढा। इया *
 * उमळती दाढा। दातांसिहि ॥६४॥ कुळवाडी रिणें दाटलीं। कां वांकडिया ढोरें बैसली। तैसी नुठील *
 * कांहीं केली। जीभचि हे ॥६५॥ कुसळें कोरडीं। वारेनि जाती बरडी। तैसी आपत्य तोंडीं। दाढियेसी *
 * ॥६६॥ आषाढीचेनि जळें। जैसीं झिरपती शैलाचीं मौळें। तैसे खांडीहूनि लाळें। पडती पूर ॥६७॥ *
 * वाचेसि अपवाडु। कानीं अनुघडु। पिंड गरूवा माकडु। होईल हा ॥६८॥ तृणाचें बुजवणें। आंदोळे *
 * वारेगुणें। तैसें येईल कांपणें। सर्वांगासी ॥६९॥ पायां पडती वेंगडी। हात वळती मुरकुंडी। बरवेपणा *
 * बागडी। नाचविजेल ॥५७०॥ मळमूत्रद्वारें। होऊनि ठाकती खोंकरें। नवसियें होती इतरें। माझां *

* निधनीं ॥७१॥ देखोनि थुंकील जगु। मरणाचा पडेल पांगु। सोयरीयां उबगु। येईल माझा ॥७२॥ *
 * रित्रया म्हणती विवसी। बाळें जाती मूर्च्छीं। किंबहुना चिळसी। पात्र होईन ॥७३॥ उभळीचा उजगरा। *
 * सेजेया साइलिया घरा। शिणवील म्हणती म्हातारा। बहुतांते हा ॥७४॥ ऐसी वार्धक्याची सूचणी। *
 * आपणिया तरुणपणीं। देखे मग मनीं। विटे जो गा ॥७५॥ म्हणे पाहे हें येईल। आणि आतांचें भोगितां *
 * जाईल। मग काय उरेल। हितालागीं ॥७६॥ म्हणोनि नाइकणें पावे। तंव आईकोनि घाली आघवें। *
 * पंगु न होतां जावें। तेथ जाय ॥७७॥ दिठी जंव जाये। तंव पाहावें तेतुलें पाहे। मूकत्वा आधी वाचा *
 * वाहे। सुभाषितें ॥७८॥ हात होती खुळे। हें पुढील मोटकें कळे। आणि करुनि घाली सकळें। *
 * दानादिकें ॥७९॥ तेव्हां ऐसी दशा येईल पुढें। तें मन होईल वेडें। तंव चिंतूनि ठेवी चोखडें। *
 * आत्मज्ञान ॥५८०॥ जैसे चोर पाहे झोंबती। तंव आजीचि रुसिजे संपत्ती। कां झांकाझांकी वाती। *
 * न वचतां कीजे ॥८१॥ तैसें वार्धक्य यावें। मग जें वायां जावें। तें आतांचि आघवें। सवतें केलें *
 * ॥८२॥ आतां मोडूनि ठेलीं दुर्गे। कां वळित धरिलें खगें। तेथ उपेक्षुनि जो रिगे। तो नागवला कीं *
 * ॥८३॥ तैसें वृद्धाप्य होये। आलेपणें वायां जाये। जे तो शतवृद्ध आहे। नेणों केंचा ॥८४॥ झाडिलीं *
 * कोळें झाडी। तया न फळे जेवी बोंडीं। जाहला आग्नि तरी राखोंडीं। जाळील काई ॥८५॥ म्हणोनि *
 * वृद्धाप्याचेनि आठवें। वृद्धाप्या जो नागवे। तयाचां ठायीं जाणावें। ज्ञान आहे ॥८६॥ तैसेचि नाना *
 * रोग। पडिघाती पुढां आंगा। तंव आरोग्याचे उपेग। करुनि घाली ॥८७॥ सापाचां तोंडीं। पडिली जे *

* उंडी। ते लाऊनि सांडी। प्रबुद्धु जैसा ॥८८॥ तैसा वियोग जेणें दुःखें। विपत्ति शोक पोखे। तें स्नेह *
* सांडूनि सुखें। उदासु होय ॥८९॥ आणि जेणें जेणें कडे। दोष सूतील तोंडें। तयां कर्मरंध्रां गुंडे। *
* नियमाचे दाटी ॥९०॥ ऐसऐसिया आइती। जयाची परी असती। तोचि तो ज्ञानसंपत्ती। गोसावी *
* गा ॥९१॥ आतां आणीकही एका लक्षण अलौकिका सांगेन आइका धनंजया ॥९२॥ *

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु। नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

* तरि जो या देहावरी। उदासु ऐसिया परी। उखिता जैसा बिढारीं। बैसविला आहे ॥९३॥ कां *
* झाडाची साउली। वाटे जातां मीनली। घरावरी तेतुली। आस्था नाहीं ॥९४॥ साउली सरिसीच *
* असे। परी असें हें नेणिजे जैसें। स्त्रियेचें तैसें। लोलुप्य नाहीं ॥९५॥ आणि प्रजा जे जाली। तियें *
* वस्ती कीर आलीं। कां गोरुवें बैसलीं। रुखातळीं ॥९६॥ जो संपत्तीमाजी असतां। ऐसा गमे पांडुसुता। *
* जैसा कां वाटे जातां। साक्षी ठेविला ॥९७॥ किंबहुना पुंसा। पांजरियामाजीं जैसा। वेदाज्ञेसी तैसा। *
* बिहूनि असे ॥९८॥ एन्हवीं दारागृहपुत्रीं। नाहीं जया मैत्री। तो जाण पां धात्री। ज्ञानासि गा ॥९९॥ *
* आणि महासिंधू जैसे। ग्रीष्मवर्षी सरिसे। इष्टानिष्ट तैसें। जयाचां ठायीं ॥६००॥ कां तिन्ही काळ *
* होतां। त्रिधा नव्हे सविता। तैसा सुखदुःखी चित्ता। भेदु नाहीं ॥१॥ जेथ नभाचेनि पाडें। समत्वा उणें *
* न पडे। तेथचि ज्ञान रोकडें। वोळख तूं ॥२॥ *

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥

* आणि मीवांचूनी कांहीं। आणीक गोमटें नाहीं। ऐसा निश्चयोचि तिहीं। जयाचां केला ॥३॥ शरीर *
* वाचा मानसा। पियालीं कृतनिश्चयाचा कोश। एक मीवांचूनि वासा। न पाहती आन ॥४॥ किंबहुना *
* निकट निज। जयाचें जाहलें मज। तेणें आपणयां आम्हां सेज। एकी केली ॥५॥ रिगतां वल्लभापुडें। *
* नाहीं आंगीं जीवीं सांकडें। तिये कांतेचेनि पाडें। एकसरला जो ॥६॥ मिळोनि मिळतचि असे। समुद्रीं *
* गंगाजळ जैसें। मी होऊनि मज तैसें। सर्वस्वें भजती ॥७॥ सूर्याचां होणां होईजे। कां सूर्यासर्वेचि *
* जाईजे। हें विकलेपण साजे। प्रभेसी जेवीं ॥८॥ पै पाणियाचियें भूमिके। पाणी तळपे कौतुकें। ते *
* लहरी म्हणती लौकिकें। एन्हवीं तें पाणीं ॥९॥ जो अनन्य यापरी। मी जाहलाहि मातें वरी। तोचि तो *
* मूर्तधारी। ज्ञान पै गा ॥६१०॥ आणि तीर्थे धौतें तटें। तपोवनें चोखटें। आवडती कपाटें। वसवूं जया *
* ॥११॥ शैलकक्षांची कुहरें। जळाशयपरिसरें। आर्धिष्ठी जो आदरें। नगरा न ये ॥१२॥ बहु एकांतावरी *
* प्रीति। जया जनपदावरी खंति। जाण मनुष्याकारें मूर्तीं। ज्ञानाची तो ॥१३॥ आणिकहि पुढती। *
* चिन्हें गा सुमती। ज्ञानाचिये निरुती। लागीं सांगों ॥१४॥ *

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्। एतज् ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

* तरी परमात्मा ऐसें। जें एक वस्तु असे। तें जया दिसे। ज्ञानास्तव ॥१५॥ तें एकवांचूनि आनें। *
* जियें भवस्वर्गादि ज्ञानें। तें अज्ञान ऐसें मनें। निश्चयो करी ॥१६॥ स्वर्गा जाणें हें सांडी। भवविषयीं *

* कान झाडी। दे आत्मज्ञानीं बुडी। सद्वावाची ॥१७॥ भंगलिये वाटे। शोधूनियां अव्हांटे। निघिजे जेवीं *
 * निटें। राजपंथें ॥१८॥ तैसें ज्ञानजाता करी। आघवेंचि एकीकडे सारी। मग मन बुद्धि मोहरी। *
 * आत्मज्ञानीं ॥१९॥ म्हणे एक हेंचि आथी। येर जाणणें ते भ्रांती। ऐसी निकुरेंसीं मती। मेरु होय *
 * ॥६२०॥ एवं निश्चयो जयाचा। द्वारीं अध्यात्मज्ञानाचां। धरुव देवो गगनींचा। तैसा राहिला ॥२१॥ *
 * तयाचां ठायीं ज्ञान। या बोला म्हणसी व्यवधान। जे ज्ञानीं बैसलें मन। तेव्हांचि तें तो ॥२२॥ तरि *
 * बैसलेपणें जें होये। तें बैसतांचि बोलें न होये। तरि ज्ञाना तया आहे। सरिसा पाडु ॥२३॥ आणि *
 * तत्त्वज्ञान निर्मळ। फळे जें एक फळ। तें ज्ञेयहीवरी सरळ। दिठी जया ॥२४॥ एन्हवीं बोधा आलेनि *
 * ज्ञानें। जरी ज्ञेय न दिसेचि मनें। तरी ज्ञानलाभुही न मनें। जाहला सांता ॥२५॥ आंधळेनि हातीं *
 * दिवा। घेऊनि काय करावा। तैसा ज्ञाननिश्चयो आघवा। वायां जाय ॥२६॥ जरि ज्ञानाचेनि प्रकाशें। *
 * परतत्त्वीं दिठी न पैसे। ते स्फूर्तींचि असे। अंध होउनी ॥२७॥ म्हणोनि ज्ञान जेतुलें दावी। तेतुली ही *
 * वस्तुचि आघवी। ते देखे ऐसी व्हावी। बुद्धि चोख ॥२८॥ यालागीं ज्ञानें निर्दोखें। दाविलें ज्ञेय देखे। *
 * तैसेनि उन्मेखें। आथिला जो ॥२९॥ जेवढी ज्ञानाची वृद्धी। तेवढीच जयाची बुद्धी। तो ज्ञान हें *
 * शाब्दीं। करणें न लगे ॥३०॥ पै ज्ञानाचिये प्रभेसवें। जयाची मती ज्ञेयीं पावे। तो हातधरणिआ शिवे। *
 * परतत्त्वातें ॥३१॥ तोचि ज्ञान हें बोलतां। विस्मो कवण पांडुसुता। काय सवितयातें सविता। म्हणावें *

* असे ॥३२॥ तंव श्रोतां म्हणितलें असो। न सांगतियाचा आर्तिसो। ग्रंथोक्ती तेथ आडसो। घालिसी *
 * कां ॥३३॥ तुझा हाचि आम्हां थोरु। वक्तृत्वाचा पाहुणे। जे ज्ञानविषो फारु। निरोपिला ॥३४॥ *
 * रसु होआवा आर्तिमात्रु। हा घेतासि कविमंत्रु। तरि अवंतूनि शत्रु। करितोसि कां गा ॥३५॥ ठायीं *
 * बैसतिये वेळे। जे रससोय घेऊनि पळे। तियेचा येरु वोडव मिळे। कोणा अर्था ॥३६॥ आघवांचि *
 * विषयीं भादी। परि सांजवणी टेंकों नेदी। ते खुरतोडी नुसधी। पोषी कवण ॥३७॥ तैसी ज्ञानीं मती *
 * न फंके। येर जल्पती नेणों केतुकें। परि तें असो निकें। केलें तुवां ॥३८॥ जया ज्ञानलेशोद्देशें। *
 * किजती योगादि सायासें। तें धणीचें आणि तुझिया ऐसें। निरूपण ॥३९॥ अमृताची सांतवांकुडी। *
 * लागो कां अनुघडी। सुखाचां दिसीं कोडी। गणिजतु कां ॥४०॥ पूर्णचंद्रेसीं राती। युग एक असो न *
 * पाहती। तरि काय पाहत आहाती। चकोरें ते ॥४१॥ तैसें ज्ञानाचें बोलणें। आणि येणें रसाळपणें। *
 * आतां पुरे कोण म्हणे। आकर्णितां ॥४२॥ आणि सभाग्यु पाहुणा ये। सुभगचि वाढती होये। तें सरों *
 * नेणे रससोये। ऐसें आथी ॥४३॥ तैसा जाहला प्रसंगु। जे ज्ञानी आम्हांसि लागु। आणि तुजही *
 * अनुरागु। आथि येथ ॥४४॥ म्हणोनि यया वाखाणा-। पासीं से आली चौगुणा। ना म्हणों नये *
 * देखणा। होसी ज्ञानी ॥४५॥ तरी आतां ययावरी। प्रज्ञेचा माजु धरीं। पदें साच करीं। निरूपणीं *
 * ॥४६॥ या संतवाक्यासरिसें। म्हणितलें निवृत्तिदासें। माझेंही जी ऐसें। मनोगत ॥४७॥ यावरी आतां *
 * तुम्हीं। आज्ञापिला स्वामी। वायां वाग् मी। वाढों नेदी ॥४८॥ एवं इयें अवधारा। ज्ञानलक्षणें अठरा। *

* श्रीकृष्णें धनुर्धरा। निरूपिलीं ॥४९॥ मग म्हणे या नांवे। ज्ञान एथ जाणावे। हें स्वमत आणि आघवे।
 * ज्ञानियेही म्हणती ॥६५०॥ करतळावरी वाटोळा। डोलतु देखिजे आंवळा। तैसें ज्ञान आम्हीं डोळां।
 * दाविलें तुज ॥५१॥ आतां धनंजया महामती। अज्ञान ऐसी वंदती। तेही सांगों व्यक्ती। लक्षणेंसीं
 * ॥५२॥ एन्हीं ज्ञान फुडें जालिया। अज्ञान जाणवे धनंजया। जें ज्ञान नव्हे तें अपैसया। अज्ञानचि
 * ॥५३॥ पाहें पां दिवसु आघवा सरे। मग रात्रीची बारी उरे। वांचूनि कांही तिसरें। नाहीं जेवीं ॥५४॥
 * तैसें ज्ञान जेथ नाहीं। तेंचि अज्ञान पाहीं। तरि सांगों कांहीं कांहीं। चिन्हें तियें ॥५५॥ तरि संभावने
 * जिये। जो मानाची वाट पाहे। सत्कारें होये। तोषु जया ॥५६॥ गर्वे पर्वताचीं शिखरें। तैसा महत्वावरुनि
 * नुतरे। तयाचां ठायीं पुरें। अज्ञान आहे ॥५७॥ आणि स्वधर्माची मांगळी। बांधे वाचेचां पिंपळीं।
 * उभिला जैसा देउळीं। जाणोनि कुंचा ॥५८॥ घाली विद्येचा पसारा। सुये सुकृताचा डांगोरा। करी
 * तेतुलें मोहरा। स्फीतीचिया ॥५९॥ आंग वरिवरी चर्ची। जनातें अभ्यर्चितां वंची। तो जाण पां
 * अज्ञानाची। खाणी एथ ॥६०॥ आणि वन्ही वनीं विचरे। तेथ जळती जैसीं जंगमें स्थावरें। तैसें
 * जयाचेनि आचारें। जगा दुःख ॥६१॥ कौतुकें जें जें जल्मे। तें सबळाहूनि तीख रुपे। विषाहूनि
 * संकल्पें। मारकु जो ॥६२॥ तयातें बहु अज्ञान। तोचि अज्ञानाचें निधान। हिंसेसि आयतना जयाचें
 * जिणें ॥६३॥ आणि फुंकें भाती फुगे। रेचिलिया सवेंचि उफगे। तैसा संयोगवियोगें। चढे वोहटे

* ॥६४॥ पडली वारयाचां वळसां। धुळी चढे आकाशा। हारखा वळघे तैसा। स्तुतीवेळे ॥६५॥ निंदा
 * मोटकी आडके। आणि कपाळ धरुनि ठाके। थेंबें विरे वारेनि शोखे। चिखलु जैसा ॥६६॥ तैसा
 * मानापमानीं होये। जो कोणहीही उर्मी न साहे। तयाचां ठायीं आहे। अज्ञान पुरें ॥६७॥ आणि जयाचां
 * मनीं गांठी। वरिवरी मोकळी वाचा दिठी। आंगें मिळे जीवें पाठी। भलतया दे ॥६८॥ व्याधाचें चारा
 * घालणें। तैसें प्रांजळ जोगावणें। चांगाचीं अंतःकरणें। विरु करी ॥६९॥ गार शेवाळें गुंडाळलीं। कां
 * निंबोळी जैसी पिकली। तैसी जयाची भली। बाह्य क्रिया ॥६७०॥ अज्ञान तयाचां ठायीं। ठेविलें असे
 * पाहीं। या बोला आन नाहीं। सत्य मानीं ॥७१॥ आणि गुरुकुळें लाजे। जो गुरुभक्ती उभजे। विद्या
 * घेऊनि माजे। गुरुसींचि ॥७२॥ तयाचें नांव घेणें। हें वाचे शूद्रान्न होणें। परि घडलें लक्षणें। बोलतां
 * इयें ॥७३॥ आतां गुरुभक्तांचें नांव घेवों। तेणें वाचे प्रायश्चित्त देवों। गुरुसेवका नांव पाहा हो। सूर्य
 * जैसा ॥७४॥ येतुलेनि पांगु पापाचा। निस्तरेल हे वाचा। जो गुरुतल्पगाचा। नामीं जाला ॥७५॥ हा
 * ठायवरी। तया नांवाचें भय हरी। मग म्हणे अवधारीं। आणिकें चिन्हें ॥७६॥ तरी आंगें कर्में ढिला।
 * जो मनें विकल्पें भरला। अडवींचा अवगळला। कुहा जैसा ॥७७॥ तया तोंडीं कांटावडें। आंतु नुसतीं
 * हाडें। अशुचि तेणें पाडें। सबाह्य जो ॥७८॥ जैसें पोटालागीं सुणें। उघडें झांकलें न म्हणे। तैसें
 * आपुलें परावें नेणे। द्रव्यालागीं ॥७९॥ एया ग्रामकुलाचां ठायीं। जैसा मिळणी ठावो अठावो नाहीं।
 * तैसा स्त्रीविषयीं कांहीं। विचारीना ॥८०॥ कर्माचा वेळु चुके। कां नित्य नैमित्तिक ठाके। तें जया न

* दुखे। जीवामार्जी ॥८१॥ पापी जो निसुगु। पुण्याविषयीं आर्तिं निलागु। जयाचां मनीं वेगु। विकल्पाचा *
 * ॥८२॥ तो जाण निखळा। अज्ञानाचा पुतळा। जो बांधोनि असे डोळां। वित्ताशेतें ॥८३॥ आणि *
 * स्वार्थे अळुमाळें। जो धैर्यापासोनि चळे। जैसें तृणबीज ढळे। मुंगियेचेनि ॥८४॥ पावो सूदलिया सवें। *
 * जैसें थिल्लर कालवे। तैसा भयाचेनि नांवें। गजबजे जो ॥८५॥ वायुचेनि सावायें। धू दिगंतवरी जाये। *
 * दुःखवार्ता होये। तैसें जया ॥८६॥ मनोरथांचिया धारसा। वाहणें जयाचिया मानसा। पूर्वीं पडिला *
 * जैसा। दुधिया पाहीं ॥८७॥ वाउधणाचिया परी। जो आश्रो केहींचि न धरी। क्षेत्रीं तीर्थीं पुरीं। थारों *
 * नेणे ॥८८॥ कां मातलिया सरडा। पुढती बुड पुढती शेंडा। हिंडणवारा कोरडा। तैसा जया ॥८९॥ *
 * जैसा रोंविल्याविणें। रांजणु थारों नेणे। तैसा पडे तें राहणें। एन्हवीं हिंडे ॥९०॥ तयाचां ठायीं *
 * उदंड। अज्ञान असे वितंड। जो चांचल्यें भावंड। मर्कटाचें ॥९१॥ आणि पै गा धनुर्धरा। जयाचिया *
 * अंतरा। नाहीं वोढावारा। संयमाचा ॥९२॥ लेंडिये आला लोंढा। न मनी वाळुवेचा वरंडा। तैसा *
 * निषेधाचिया तोंडा। बिहेना जो ॥९३॥ व्रतातें आड मोडी। धर्मातें पायें वोलांडी। नियमाची आस *
 * तोडी। जयाची क्रिया ॥९४॥ नाहीं पापाचा कंटाळा। नेदी पुण्यासी जिव्हाळा। लाजेचा पेंडवळा। *
 * खाणोनि घाली ॥९५॥ कुळेंसीं जो पाठमोरा। वेदाज्ञेसी दुन्हा। कृत्याकृत्यव्यापारा। निवाडु नेणे *
 * ॥९६॥ वसो जैसा मोकाटु। वारा जैसा अफाटु। फुटला जैसा पाटु। निरंजनीं ॥९७॥ आंधळें हातिरुं *

* मातलें। डोंगरीं जैसें पेटलें। तैसें विषयीं सुटलें। चित्त जयाचें ॥९८॥ पै उबडां काइ न पडे। मोकाटु *
 * कोणां नातुडे। ग्रामद्वारींचें आडें। नोलांडी कोण ॥९९॥ जैसें सर्त्रीं अन्न जालें। कीं सामान्या बीक *
 * आलें। वाणसियेचें उभलें। कोण न रिगे ॥१००॥ तैसें जयाचें अंतःकरण। तयाचां ठायीं संपूर्ण। *
 * अज्ञानाची जाण। ऋद्धि आहे ॥१०१॥ आणि विषयांची गोडी। जो जितु मेला न संडी। स्वर्गीही खावया *
 * जोडी। येथौनिचि ॥१०२॥ जो अखंड भोगा जचे। जया व्यसन काम्यक्रियेचें। मुख देखोनि विरक्ताचें। *
 * सचैल करी ॥१०३॥ विषो शिणोनि जाये। परि न शिणे सावधु नोहे। कुहिला हातीं खायो। कोढी जैसा *
 * ॥१०४॥ खरी टेंको नेदी उडे। लातौनि फोडी नाकाडें। तन्ही जेवीं न काढे। माघौता खरु ॥१०५॥ तैसा *
 * जो विषयांलागीं। उडी घाली जळतिये आगीं। व्यसनाची आंगीं। लेणीं मिरवी ॥१०६॥ फुटोनि पडे तंवा *
 * मृग वाढवी हांवा। परि न म्हणे ते मावा। रोहिणीची ॥१०७॥ तैसा जन्मोनि मृत्यूवरी। विषयीं त्रासितां *
 * बहुतीं परी। तन्ही त्रासु नेघे धरी। आर्थिक प्रेम ॥१०८॥ पहिलिये बाळदशे। आई बा हेंचि पिसें। तें सरे *
 * मग स्त्रीमांसें। भुलोनि ठाके ॥१०९॥ मग स्त्री भोगितां थावो। वृद्धाप्य लागे येवों। तेव्हां तोचि प्रेमभावो। *
 * बाळकासि आणी ॥११०॥ आंधळें व्यालें जैसें। तैसा बाळें परिवसे। परी जी मरे तो न त्रासे। *
 * विषयांसि जो ॥१११॥ जाण तयाचां ठायीं। अज्ञानासि पारु नाहीं। आतां आणीकें कांहीं। चिन्हें सांगों *
 * ॥११२॥ तरि देह हेचि आत्मा। ऐसेया जो मनोधर्मा। वळघोनियां कर्मा। आरंभु करी ॥११३॥ आणि *
 * उणें कां पुरें। जें जें कांहीं आचरे। तयाचेनि आविष्कारें। कुंथों लागे ॥११४॥ डोईये ठेविलेनि भोजें। *

* देवलविसें जेवीं फुंजे। तैसा विद्या वयसा माजे। उताणा चाले ॥१५॥ म्हणे मीचि एकु आथी। *
 * माझांचि घरीं संपत्ती। माझी आचरती रिती। कोणा आहे ॥१६॥ नाहीं माझेनि पाडें वाडु। मी सर्वजु *
 * एकुचि रूढु। ऐसा गर्वतुष्टीगंडु। घेऊनि ठाके ॥१७॥ व्याधि लागलिया माणुसा। नये भोग दाऊं *
 * जैसा। निकें न साहे जो तैसा। पुढिलांचें ॥१८॥ पैं गुणु तेतुला खाय। स्नेह कीं जाळितु जाय। जेथ *
 * ठेविजे तेथ होय। मसीऐसें ॥१९॥ जीवनें शिंपिला तिडपिडी। विजिला प्राण सांडी। लागला तरी *
 * काडी। उरों नेदी ॥७२०॥ आळुमाळ प्रकाशु करी। तेतुलेनीचि उबारा धरी। तैसिया दीपाचिया परी। *
 * सुविद्यु जो ॥२१॥ औषधाचेनि नांवें अमृते। नवज्वरु जैसा आंबुथे। कां विषचि होऊनि परतें। सर्पा *
 * दूध ॥२२॥ तैसा सद्गुणीं मत्सरु। व्युत्पत्ती अहंकारु। तपोज्ञानें अपारु। ताठा चढे ॥२३॥ अंत्यु *
 * राणिवे बैसविला। आरें धारणु गिळिला। तैसा गर्वे फुगला। देखसी जो ॥२४॥ जो लाटणें ऐसा न लवे। *
 * पाथरु तेवीं न द्रवे। गुणियासि नागवे। फोडसें जैसें ॥२५॥ किंबहुना तयापासीं। अज्ञान आहे *
 * वाढीसी। हें निकरें गा तुजसीं। बोलत असों ॥२६॥ आणीक पाही धनंजया। जो गृहदेह सामग्रिया। *
 * न देखे कालचेया। जन्मातें गा ॥२७॥ कृतघ्ना उपेगु केला। कां चोरा व्यवहारु दिधला। निसुगु *
 * स्तविला। विसरे जैसा ॥२८॥ वोढाळितां लाविलें। तें तैसेंच कान पूंस वोलें। कीं पुढती वोढाळूं *
 * आलें। सुणें जैसें ॥२९॥ बेडूक सापाचां तोंडीं। जातसे सबुडबुडीं। तो मक्षिकांचिया कोडीं। स्मरेना *

* कांहीं ॥७३०॥ तैसीं नवही द्वारें स्रवती। आंगीं देहाची लुती जिती। जेणें जाली तें चित्तीं। सलेना *
 * जया ॥३१॥ मातृकोदरकुहरीं। सूनि विष्टेचां दाथरीं। जठरीं नवमासवरी। उकडला जें ॥३२॥ ते *
 * गर्भीची व्यथा। कां जे जालें उपजतां। तें कांहींचि सर्वथा। नाठवी जो ॥३३॥ मलमूत्रपंकीं। लोळतें *
 * बाळ अंकीं। तें देखोनि जो न थुंकी। त्रासु नेघे ॥३४॥ कालचि ना जन्म गेलें ॥ पाहेचि पुढती आलें। *
 * हें ऐसें कांहीं वाटलें। नाहीं जया ॥३५॥ आणि पैं तयाची परी। जीविताची फरारी। देखोनि जो न *
 * करी। मृत्युचिंता ॥३६॥ जिणेयाचेनि विश्वासें। मृत्यु एक एथ असे। हें जयाचेनि मानसें। मानिजेना *
 * ॥३७॥ अल्पोदकींचा मासा। हें नाटे ऐसिया आशा। न वचेचि कां जैसा। अगाध डोहा ॥३८॥ कां *
 * गोरीचिया भुली। मृग व्याधा दिठी न घाली। गळु न पाहतां गिळिली। उंडी मीनें ॥३९॥ दीपाचिया *
 * झगमगा। जाळील हे पतंगा। नेणवेचि पैं गा। जयापरी ॥७४०॥ गव्हारु निद्रासुखें। घर जळत असे *
 * तें न देखे। नेणतां जेवीं विखें। रांधिले अन्न ॥४१॥ तैसा जीविताचेनि मिषें। हा मृत्युचि आला असे। *
 * हें नेणेचि राजसें। सुखें जो गा ॥४२॥ शरीरींची वाढी। अहोरात्रांची जोडी। विषयसुखप्रौढी। साचचि *
 * मानी ॥४३॥ परि बापुडा ऐसें नेणे। जें वेश्येचें सर्वस्व देणें। तेंचि नागवणें। रूप एथ ॥४४॥ संवचोराचें *
 * साजणें। तेंचि तें प्राण घेणें। लेपा स्नपन करणें। तेंचि मरण ॥४५॥ पांडुरोगें आंग सुटलें। तें तयाचि *
 * नांवें खुंटलें। तैसें नेणे भुललें। आहारनिद्रा ॥४६॥ सन्मुख शूला। धांवतया पायें चपळा। प्रतिपदीं ये *
 * जवळा। मृत्यु जेवीं ॥४७॥ तेवीं देहा जंव जंव वाडु। जंव जंव दिवसांचा पवाडु। जंव जंव सुरवाडु। *

* भोगांचा हा ॥४८॥ तंव तंव आर्थिकाधिकें। मरण आयुष्यातें जिके। मीठ जैसें उदकें। घांसिजत असे *
 * ॥४९॥ तैसें जीवित जाये। तयास्तव काळु पाहे। हें हातोहातींचें नव्हे। ठाउकें जया ॥७५०॥ *
 * किंबहुना पांडवा। हा आंगींचा मृत्यु नीच नवा। न देखे जो मावा। विषयांचिया ॥५१॥ तो अज्ञानदेशींचा *
 * रावो। या बोला महाबाहो। न पडे गा वाटावो। आणिकांचा ॥५२॥ पै जीविताचेनि सुखें। जैसा कां *
 * मृत्यु न देखे। तैसाचि तारुण्यतोषें। जरा न गणी ॥५३॥ कडाडीं लोटला गाडा। शिखरौनी सुटला *
 * धोंडा। तैसा न देखे जो पुढां। वृद्धाप्य आहे ॥५४॥ कां आडवोहळा पाणी आलें। म्हैसयाचें जुंझ *
 * मातलें। तैसें तारुण्याचें चढलें। भुररें जया ॥५५॥ पुष्टि लागे विघरों। कांति पाहे निसरों। माथा *
 * आदरी शिरों। बागीबळ ॥५६॥ दाढी साउळ धरी। मान हालौनि वारी। तरी जो करी। प्रीयेचा पैसु *
 * ॥५७॥ पुढील उरीं आदळे। तंव न देखे जेवीं आंधळें। कां डोळ्यावरलें निगळें। आळशी तोषे ॥५८॥ *
 * तैसे तरुणेपण आजिचें। भोगितां वृद्धाप्य पाहेचें। न देखे तोचि साचें। अज्ञानु गा ॥५९॥ देखे अक्षमें *
 * कुब्जें। कीं विटावूं लागे फुंजें। परि न म्हणे पाहे माझें। हेंचि भवे ॥७६०॥ आणि आंगीं वृद्धतेची। संज्ञा *
 * ये मरणाची। परि जया तारुण्याची। भुली न फिटे ॥६१॥ तो अज्ञानाचें घर। हें साचचि घे उत्तर। *
 * तेवींचि परियेसीं थोर। चिन्हें आणिक ॥६२॥ तरि वाघाचिये अडवे। चरोनि एवा वेळ आला दैवें। तेणें *
 * विश्वासें पुढती धांवे। वसू जैसा ॥६३॥ कां सर्पघराआंतु। अवचटें ठेवा आणिला स्वरथु। येतुलियासाठीं *

* निश्चितु। नास्तिकु होय ॥६४॥ तैसेंनि अवचटें हें। एकदोनी वेळां लाहे। एथ रोग एक आहे। हें मानीना *
 * जो ॥६५॥ वैरिया नीद आली। आतां द्वंद्वें माझीं सरलीं। हें मानी तो सपिलीं। मुकला जेवीं ॥६६॥ *
 * तैसी आहारनिद्रेची उजरी। रोग निवांतु जोंवरी। तंव जो न करी। व्याधीचिंता ॥६७॥ आणि *
 * स्त्रीपुत्रादिमेळें। संपत्ति जंव जंव फळे। तेणें रजें डोळे। जाती जयाचे ॥६८॥ सवळेचि वियोगु पडेल। *
 * विळौनि विपत्ति येईल। हें दुःख पुढील। देखेना जो ॥६९॥ तो अज्ञान गा पांडवा। आणि तोही तोचि *
 * जाणावा। जो इंद्रियें अव्हासवा। चारी एथ ॥७०॥ वयसेचेनि उवायें। संपत्तीचेनि सावायें। सेव्यासेव्य *
 * जाये। सरकटितु ॥७१॥ न करावें तें करी। असंभाव्य मनीं धरी। चिंतूं नये तें विचारी। जयाची मती *
 * ॥७२॥ रिघे जेथ न रिघावें। मार्गे जें न घ्यावें। स्पर्श जेथ न लागावें। आंग मन ॥७३॥ न वचावें तेथ *
 * जाये। न पाहावें तें जो पाहे। न खावें तें खाये। तेवींचि तोषे ॥७४॥ न धरावा तो संगु। न लागावें तेथ *
 * लागु। नाचरावा तो मार्गु। आचरे जो ॥७५॥ नायकावें तें आइके। न बोलावें तें भुंके। परि दोष होईल *
 * हें न देखे। प्रवर्ततां ॥७६॥ अंगा मनासि रुचि यावें। येतुलेनि कृत्याकृत्य नाठवे। जो करणेयाचेनि *
 * नांवें। भलतेंचि करी ॥७७॥ परि पाप मज होईल। कां नरकयातना येईल। हें कांहींचि पुढील। देखेना *
 * जो ॥७८॥ तयाचेनि आंगलगे। अज्ञान जर्गीं दाटुगे। जें सज्ञानाही संगें। झोंबों सके ॥७९॥ असो हें *
 * आइका। अज्ञानचिन्हें आणिक। जेणें तुज सम्यक। जाणवे तें ॥८०॥ तरी जयाची प्रीति पुरी। *
 * गुंतली देखसी घरीं। नवगंधकेसरीं। भ्रमरी जैशी ॥८१॥ साकरेचिया राशी। बैसली नुडे माशी। *

* तैसेनि स्त्रीचित्त आवेशी। जयाचें मन ॥८२॥ टेला बेडूक कुंडी। मशक गुंतला शेंबुडी। ढोरु सबुडबुडी। *
 * रुतला पंकी ॥८३॥ तैसें घरींहूनि निघणें। नाहीं जीवितें मरणें। जया साप होऊनि असणें। भाटीं *
 * तिये ॥८४॥ प्रियोत्तमाचां कंठीं। प्रमदा घे आटी। तैशी जीवेंसी कोंपटी। धरुनि ठाके ॥८५॥ *
 * मधुरसादोशें। मधुकरी जचे जैसें। गृहसंगोपन तैसें। करी जो गा ॥८६॥ म्हातारपणीं जालें। माणिक *
 * एक विपायिलें। तयाचें कां जेतुलें। मातापितरां ॥८७॥ तेतुलेनि पाडें पार्था। घरीं जया प्रेम आस्था। *
 * आणि स्त्रीवांचूनि सर्वथा। जाणेना जो ॥८८॥ महापुरुषाचें चित्त। जालिया वस्तुगता। ठाके *
 * व्यवहारजात। जयापरी ॥८९॥ तैसा स्त्रीदेहीं जो जीवें। पडोनियां सर्वभावं। कोण मी काय करावें। *
 * कांहीं नेणे ॥९०॥ हानि लाज न देखे। परापवादु नाइके। जयाचीं इंद्रियें एकमुखें। स्त्रिया केलीं *
 * ॥९१॥ चित्त आराधी स्त्रियेचें। स्त्रियेचेनि छंदें नाचे। माकड गारुडियाचें। जैसें होय ॥९२॥ आपणपेहीं *
 * शिणवी। इष्टमित्र दुरावी। मग कवडाचि वाढवी। लोभी जैसा ॥९३॥ तैसा दानपुण्यें खांची। गोत्रकुटुंबा *
 * वंची। परी गारी भरी स्त्रियेची। उणी हों नेदी ॥९४॥ पूजितीं दैवतें जोगावी। गुरुतें बोलें झकवी। *
 * मायबापां दावी। निदारपण ॥९५॥ स्त्रियेचां तरी विखीं। भोगुसंपत्ति अनेकीं। आणी वस्तु निक्की। जे *
 * जे देखे ॥९६॥ प्रेमाथिलेनि भक्ते। जैसेनि भजिजे कुळदैवतें। तैसा एकप्राचितें। स्त्री जो उपासी *
 * ॥९७॥ साच आणि चोखा। तें स्त्रियेसीचि अशेखा। येरींविषयीं जोगावणूक। तेही नाहीं ॥९८॥ इयेतें *

* हन कोणी देखैला। इयेसी वेखासें जाईला। तरि युगचि बुडैला। ऐसें जया ॥९९॥ नायटेयां भेण। न *
 * मोडिजे नागांची आण। तैसी पाळी उणखुण। स्त्रियेची जो ॥१००॥ किंबहुना धनंजया। स्त्रीचि *
 * सर्वस्व जया। आणि तियेचिया जालियां। लागीं प्रेम ॥१०१॥ आणिकही जें समस्त। तेथिंचें संपत्तिजात। *
 * तें जीवाहूनि आसा। मानी जो गा ॥१०२॥ तो अज्ञानासी मूळ। अज्ञाना तेणें बळ। हें असो केवळ। तो *
 * तेंचि रूप ॥१०३॥ आणि मातलिया सागरीं। मोकलिलिया तरी। लाटांचां येरझारीं। आंदोळे जेवीं ॥१०४॥ *
 * तेवीं प्रिय वस्तु पावे। आणि सुखें जो उंचावे। तैसाचि आर्प्रियासवें। तळवटु घे ॥१०५॥ ऐसेनि जयाचां *
 * चित्तीं। वैषम्यसाम्याची वोखती। वाहे तो महामती। अज्ञान गा ॥१०६॥ आणि माझां ठायीं भक्ती। *
 * फळालागीं जया आर्ती। धनोद्देशें विरक्ती। नटणें जेवीं ॥१०७॥ कां कांताचां मानसीं। रिगोनि स्वैरिणी *
 * जैसी। राहाटे जारेंसी। जावयालागीं ॥१०८॥ तैसा मातें किरीटी। भजती गा पाउटी। करुनि जो दिठी। *
 * विषो सूये ॥१०९॥ आणि भजिन्नलियासवें। तो विषो जरी न पवे। तरी सांडी म्हणे आघवें। टवाळ हें *
 * ॥११०॥ कुणबट कुळवाडी। तैसा आन आन देव मांडी। आदिलाची परवडी। वरी तया ॥१११॥ तया *
 * गुरुमार्गा टेंके। जयाचा सुगरवा देखे। तरी तयाचा मंत्र शिके। येरु नेघे ॥११२॥ प्राणिजातेंसी निष्ठुरा *
 * स्थावरी बहु भरु। तेवींचि नाहीं एकसरु। निर्वाहो जया ॥११३॥ माझी मूर्ति निफजवी। ते घराचां *
 * कोनीं बैसवीं। आपण देवो देवी। यात्रे जाय ॥११४॥ नित्य आराधन माझें। कार्जीं कुळदेवता भजे। *
 * पर्वविशेषें कीजे। पूजा आना ॥११५॥ माझें आर्धिष्ठान घरीं। आणि वोवसे आनाचे करी। पितृकार्यावसरीं। *

* पितरांचा होय ॥१६॥ एकादशीचां दिवशीं। जेतुला पाडु आम्हांसी। तेतुलाचि नागांसी। पंचमीचां *
 * दिवशीं ॥१७॥ चौथ मोटकी पाहे। आणि गणेशाचाचि होये। चावदसी म्हणे माये। तुझाच वो दुर्गे *
 * ॥१८॥ नित्य नैमित्तिकें कर्म सांडी। मग बैसे नवचंडी। आदित्यवारीं वाढी। भैरवां पात्रीं ॥१९॥ पाठी *
 * सोमवार पावे। आणि बेलेंसी लिंगा धांवे। ऐसा एकलाचि आघवे। जोगावी जो ॥२०॥ ऐसा अखंड *
 * भजन करी। उगा नसे क्षणभरी। आघवेनि गांवद्वारीं। अहेव जैसी ॥२१॥ तैसेनि जो गा भक्तु। सैरा *
 * देखसी धांवतु। जाण अज्ञानाचा मूर्तु। अवतार तो ॥२२॥ आणि एकांतें चोखटें। तपोवनें तीर्थें तटें। *
 * देखोनि जो गा विटे। तोहि तोचि ॥२३॥ जया जनपदीं सुख। गजबजेचें कवतिका। वानूं आवडे *
 * लौकिका। तोहि तोचि ॥२४॥ आणि आत्मा गोचरु होये। ऐसी जे विद्या आहे। ते आइकोनि डोर वाहे। *
 * विद्वांसु जो ॥२५॥ उपनिषदांकडे न वचे। योगशास्त्र न रुचे। अध्यात्मज्ञानीं जयाचें। मनचि नाहीं *
 * ॥२६॥ आत्मचर्चा एकी आथी। ऐसिये बुद्धीची भिंती। पाडूनि जयाची मती। वोढाळ जाहली ॥२७॥ *
 * कर्मकांड तरी जाणे। मुखोद्गत पुराणें। ज्योतिषीं तो म्हणे। तैसेंचि होय ॥२८॥ शिल्पीं आर्तिं निपुण। *
 * सूपकर्मीही प्रवीण। विधि आथर्वण। हातीं आथी ॥२९॥ कोकीं नाहीं ठेलें। भारत तरी म्हणितलें। *
 * आगम आफाविले। मूर्त होती ॥३०॥ नीतिजात सुझे। वैद्यकही बुझे। काव्यनाटकीं दुजें। चतुर *
 * नाहीं ॥३१॥ स्मृतींची चर्चा। दंशु जाणे गारुडियाचा। निघंटु प्रज्ञेचा। पाइकी करी ॥३२॥ व्याकरणीं *

* चोखडा। तर्कीं आर्तिगाढा। परि एक अध्यात्मज्ञानीं फुडा। जात्यंधु जो ॥३३॥ तें एकवांचूनि आघवां *
 * शास्त्रीं। सिद्धांतनिर्माणधात्री। परि जळो तें मूळनक्षत्रीं। न पाहें गा ॥३४॥ मोराचां आंगीं असोसें। *
 * पिसें आहाति डोळसें। परी एकली दिठी नसे। तैसें तें गा ॥३५॥ जरी परमाणूएवढें। संजीवनीमूळ *
 * जोडे। तरी बहु काय गाडे। भरणें येरें ॥३६॥ आयुष्येवीण लक्षणें। सिसेंवीण अळंकरणें। वोहरेंवीण *
 * वाधावणें। तो विटंबु गा ॥३७॥ तैसें शास्त्रजात जाण। आघवेंचि अप्रमाण। अध्यात्मज्ञानेविण। *
 * एकलेनी ॥३८॥ यालागीं अर्जुना पाहीं। अध्यात्मज्ञानाचां ठायीं। जया नित्यबोधु नाहीं। शास्त्रमूढा *
 * ॥३९॥ तया शरीर जें जालें। तें अज्ञानाचें बीं विरुढलें। तयाचें वित्पत्तित्व गेलें। अज्ञानवेलीं ॥४०॥ *
 * तो जें जें बोले। तें अज्ञानचि फुललें। तयाचें पुण्य जें फळलें। तें अज्ञानचि गा ॥४१॥ आणि *
 * अध्यात्मज्ञान कहीं। जेणें मानिलेंचि नाहा। तो ज्ञानार्थु न देखे काई। हें बोलावें असे ॥४२॥ ऐलीचि *
 * थडी न पवतां। पळे जो माघौता। तया पैलद्वीपीची वार्ता। काय होय ॥४३॥ कां दारवंटांचि जयाचें। *
 * शीर रोंविलें खांचे। तो केवीं परिवरींचें। ठेविलें देखे ॥४४॥ तेवीं अध्यात्मज्ञानीं जया। अनोळख *
 * धनंजया। तया ज्ञानार्थु देखावया। विषो काई ॥४५॥ म्हणोनि आतां विशेषें। तो ज्ञानाचें तत्त्व न *
 * देखे। हें सांगावें आंखेंलेखें। न लगे तुज ॥४६॥ जेव्हां सगर्भे वाढिलें। तेव्हांचि पोटीचें धालें। तैसें *
 * मागिलें पदें बोलिलें। हेंचि होय ॥४७॥ वांचूनियां वेगळें। रूप करणें हें न मिळे। घेइं अवंतिलें आंधळें। *
 * तें दुजेनसीं ये ॥४८॥ एवं इये उपरतीं। ज्ञानचिन्हें मागुती। अमानित्वादि प्रभृति। वाखाणिलीं *

* ॥४९॥ जे ज्ञानपदे अठरा। केलियां येरी मोहरां। अज्ञान या आकारा। सहजे येती ॥८५०॥ मागां *
 * श्लोकाचेनि अर्धार्धे। ऐसें सांगितले मुकुंदे। ना उफराटीं इये ज्ञानपदे। तेचि अज्ञान ॥५१॥ म्हणोनि *
 * इया वाहणी। केली म्यां उपलवणी। वांचूनि दुधा मेळऊनि पाणी। फार कीजे ॥५२॥ तैसें जी न *
 * बडबडी। पदाची कोर न सांडीं। परी मूळध्वनींचिये वाढी। निमित्त जाला ॥५३॥ तंव श्रोते म्हणती *
 * राहें। कें परिहारा ठावो आहे। बिहिशी कां वाये। कविपोषका ॥५४॥ तूतें श्रीमुरारी। म्हणितले प्रगट *
 * करीं। जे आर्भिप्राय गव्हरिं। झांकिले आम्हीं ॥५५॥ तें देवाचें मनोगत। दावित आहासी तूं मूर्त। हेंही *
 * म्हणतां चित्त। दाटेल तुझे ॥५६॥ म्हणौनि असो हें न बोलों। परि साविया गा तोषलों। जे ज्ञानतरिये *
 * मेळविलों। श्रवणसुखाचिये ॥५७॥ आतां इयावरी। जे तो श्रीहरी। बोलिला तें करीं। कथन वेगां *
 * ॥५८॥ इया संतवाक्यासरिसें। म्हणितले निवृत्तिदासें। जी अवधारा तरी ऐसें। बोलिलें देवें ॥५९॥ *
 * म्हणती तुवां पांडवा। हा चिन्हसमुच्चयो आघवा। आयकिला तो जाणावा। अज्ञानभागु ॥८६०॥ इया *
 * अज्ञानविभागा। पाठी देऊनि पै गा। ज्ञानविखीं चांगा। दृढा होइजे ॥६१॥ मग निर्वाळिलेनि ज्ञानें। *
 * ज्ञेय भेदैल मनें। तें जाणावया अर्जुनें। आस केली ॥६२॥ तंव सर्वज्ञांचा रावो। म्हणे जाणोनि तयाचा *
 * भावो। परिसें ज्ञेयाचा आर्भिप्रावो। सांगों आतां ॥६३॥ *

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते। अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥

* तरि ज्ञेय ऐसें म्हणणें। वस्तुतें येणेंचि कारणें। जें ज्ञानेवांचूनि कवणें। उपायें नये ॥६४॥ आणि *
 * जाणितलेयावरौतें। कांहीं करणें नाही जेथें। जाणणेंचि तन्मयातें। आणी जयाचें ॥६५॥ जें *
 * जाणितलेयाचिसाठीं। संसाराची काढूनियां कांटी। जिरोनि जाइजे पोटीं। नित्यानंदाचां ॥६॥ तें ज्ञेय *
 * गा ऐसें। आदि जया नसे। परब्रह्म आपैसें। नांव जया ॥६७॥ जें नाही म्हणों जाइजे। तंव विश्वाकार *
 * देखिजे। आणि विश्वचि ऐसें म्हणिजे। तरि हे माया ॥६८॥ रूप वर्ण व्यक्ती। नाही दृश्य द्रष्टा स्थिती। *
 * तरि कोणें कैसें आथी। म्हणावें पां ॥६९॥ आणि साचचि जरी नाही। तरि महदादिक कोणें ठाई। *
 * स्फुरत कैचें काई। तेणेंवीण असे ॥८७०॥ म्हणोनि आथी नाथी हे बोली। जें देखोनि मुकी जाहली। *
 * विचारासीं मोडली। वाट जेथें ॥७१॥ जैसी भांडघटशरावीं। तदाकारें असे पृथ्वी। तैसें सर्व होऊनियां *
 * सर्वीं। असे जे वस्तु ॥७२॥ *

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥

* आघवांचि देशीं काळीं। नव्हतां देशकाळावेगळी। जे क्रिया स्थूळस्थूळीं। तेचि हात जयाचे *
 * ॥७३॥ तयातें याकारणें। विश्वबाहु ऐसें म्हणणें। जें सर्वचि सर्वपणें। सर्वदा करी ॥७४॥ आणि *
 * समस्तांही ठायां। एके काळीं धनंजया। आलें असे म्हणोनि जया। विश्वांग्रि नांव ॥७५॥ पै सवितया *
 * आंग डोळे। नाहीत वेगळेवेगळे। तैसें सर्वद्रष्टे सकळे। स्वरूपें जें ॥७६॥ म्हणोनि विश्वतश्चक्षु। हा *
 * अचक्षूचां ठायीं पक्षु। बोलावया दक्षु। जाहला वेदू ॥७७॥ जें सर्वाच्या शिरावरी। जे नित्य नांदे *

* सर्वापरी। ऐसिये स्थितीवरी। विश्वमूर्धा म्हणिपे ॥७८॥ पै गा मूर्ति तेंचि मुख। हुताशनीं जैसें देखा *
 * तैसें सर्वपणें अशेखा। भोक्तें जें ॥७९॥ यालागीं तया पार्था। विश्वतोमुख हे व्यवस्था। आली *
 * वाक्पथा। श्रुतीचिया ॥८०॥ आणि वस्तुमात्रीं गगना। जैसें असे संलग्ना। तैसे शब्दजातीं काना। *
 * सर्वत्र जया ॥८१॥ म्हणोनि आम्ही तयातें। म्हणों सर्वत्र आइकतें। एवं जें सर्वातें। ावरुनि असे *
 * ॥८२॥ एन्हवीं तरी महामती। विश्वतश्चक्षु इया श्रुती। तयाचिये व्याप्ती। रूप केलें ॥८३॥ वांचूनि *
 * हस्त नेत्र पाये। हे भाष तेथ कें आहे। सर्व शून्यत्वाचा न साहे। निष्कर्षु जें ॥८४॥ पै कल्लोळातें *
 * कल्लोळें। ग्रसिजत असे ऐसें कळे। परि ग्रसितें ग्रासावेगळें। आहे काई ॥८५॥ तैसें साचचि जें एका *
 * तेथ कें व्याप्यव्यापक। परि बोलावया नावेक। करावें लागे ॥८६॥ पै शून्य जें दावावें जाहलें। तें *
 * बिंदुलें एक पाहिजे केलें। तैसें अद्वैत सांगावें बोलें। तें द्वैत कीजे ॥८७॥ एन्हवीं तरी पार्था। *
 * गुरुशिष्यसत्पथा। आडळु पडे सर्वथा। बोल खुंटे ॥८८॥ म्हणोनि गा श्रुती। द्वैतभावे अद्वैतीं। *
 * निरुपणाची वाहती। वाट केली ॥८९॥ तेचि आतां अवधारीं। इयें नेत्रगोचरें आकारीं। तें ज्ञेय *
 * जियापरी। व्यापक असे ॥९०॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥९४॥

तरी तें गा किरीटी ऐसें। अवकाशीं आकाश जैसें। पटीं पटु होऊनि असे। तंतु जेवीं ॥९५॥

* उदक होऊनि उदकीं। रसु जैसा अवलोकीं। दीपपणें दीपकीं। तेज जैसें ॥९२॥ कर्पूरत्वे कापुरीं। *
 * सौरभ्य असे जयापरी। शरीर होऊनि शरीरीं। कर्म जेवीं ॥९३॥ किंबहुना जैसें पांडवा। सोनेंचि *
 * सोनयाचा रवा। तैसें जें या सर्वां। सर्वांगीं असे ॥९४॥ परी रवेपणामाजिवडे। तंव रवा ऐसे आवडे। *
 * वांचूनि सोनें सांगडें। सोनया जेवीं ॥९५॥ पै गा वोघुचि वांकुडा। परि पाणी उजू सुहाडा। वन्हि आला *
 * लोखंडा। लोह नव्हे कीं ॥९६॥ घटाकारें वेंटाळें। तेथ नभ गमे वाटोळें। मठीं तरी चौफळें। आयें दिसे *
 * ॥९७॥ परि ते अवकाश जैसे। नोहेजतीचि कां आकाशें। जें विकार होऊनि तैसें। विकारी नोहे *
 * ॥९८॥ मन मुख्य इंद्रियां। सत्त्वादि गुणां ययां। सारिखें ऐसें धनंजया। आवडे कीर ॥९९॥ परि पै *
 * गुळाची गोडी। नोहे बांधया सांगडी। तैसीं गुण इंद्रियें फुडीं। नाहीं तेथ ॥१००॥ अगा क्षीराचिये दशे। *
 * घृत क्षीराकारें असे। परि क्षीरचि नोहे जैसें। कपिध्वजा ॥१०१॥ तैसें जें इये विकारीं। विकार नोहे *
 * अवधारीं। पै आकारा नाम भोंवरी। येर सोनें तें सोनें ॥१०२॥ इया उघड मन्हाटिया। तें वेगळेपण *
 * धनंजया। जाण गुणइंद्रियां। पासोनियां ॥१०३॥ नामरूपसंबंधु। जातिक्रियाभेदु। हा आकारासीच *
 * प्रवादु। वस्तूसि नाहीं ॥१०४॥ तें गुण नव्हे कहीं। गुणा तया संबंधु नाहीं। परि तयाचांचि ठायीं। *
 * आभासती ॥१०५॥ येतुले यासाठीं। संभ्रांताचां पोटीं। ऐसें जाय किरीटी। ना हेंचि धरीं ॥१०६॥ तरि तें *
 * गा धरणें ऐसें। अभ्रातें जेवीं आकाशें। कां प्रतिवदन जैसें। आरसेनि ॥१०७॥ सूर्य प्रतिमंडळ। जैसेनि *
 * धरी सलिल। कां रश्मिकरीं मृगजळा धरिजे जेवीं ॥१०८॥ तैसें गा संबंधेवीण। यया सर्वातें धरी निर्गुण।

येरी तें वायां जाण। मिथ्यादृष्टी ॥९॥ आणि यापरी निर्गुणें। गुणातें भोगणें। रंका राज्य करणें। स्वप्नीं
जैसें ॥९१०॥ म्हणोनि गुणाचा संगु। अथवा गुणभोगु। हा निर्गुणीं लागु। बोलों नये ॥९१॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च। सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥९५॥

जें चराचर भूतां। मार्जीं असे पांडुसुता। नाना वन्हीं उष्णता। अभेदें जैसी ॥९२॥ तैसेनि
आर्विनाशभावे। जें सूक्ष्मदशे आघवे। व्यापूनि असे तें जाणावे। ज्ञेय एथ ॥९३॥ जें एक आंतु बाहेरी।
जें एक जवळ दुरी। जें एकवांचूनि परी। दुजी नाहीं ॥९४॥ क्षीरसागरींची गोडी। मार्जीं बहु थडिये
थोडी। हें नाहीं तया परवडी। पूर्ण जें गा ॥९५॥ स्वेदजप्रभृती। वेगळाल्या भूतीं। जयाचिये अनुस्यूती।
खोमणें नाहीं ॥९६॥ पै श्रोतेमुखटिळका। घटसहस्रा अनेकां। मार्जीं बिंबोनि चंद्रिका। न भेदे जेवीं
॥९७॥ नाना लवणकणाचिये राशी। क्षारता एकचि जैसी। कां कोडी एकीं उर्सीं। एकचि गोडी
॥९८॥

आर्विभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्। भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥९६॥

तैसें अनेकीं भूतजातीं। जें आहे एकी व्याप्ती। विश्वकार्या सुमती। कारण जें गा ॥९९॥ म्हणोनि
हा भूताकारु। जेथौनि तेंचि तया आधारु। कल्लोळा सागरु। जियापरी ॥१००॥ बाल्यादि तिन्ही
वयसी। काया एकचि जैसी। तैसें आदिस्थितिग्रासीं। अखंड जें ॥१०१॥ सायंप्रातर्मध्यान्ह। होतां

जातां दिनमाना। जैसें कां गगना। पालटेना ॥१०२॥ अगा सृष्टीवेळे प्रियोत्तमा। जया नांव म्हणती ब्रह्मा।
व्याप्ति जें विष्णुनामा। पात्र जाहलें ॥१०३॥ मग आकारु हा हारपे। तेव्हां रुद्र जें म्हणिपे। तेंही गुणत्रय
जेव्हां लोपे। तें जें शून्य ॥१०४॥ नभाचें शून्यत्व गिळून। गुणत्रयातें नुरऊन। तें शून्य तें महाशून्या।
श्रुतिवचनसंमत ॥१०५॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥१०७॥

जें अग्नीचें दीपना। जें चंद्राचें जीवन। सूर्याचे नयना। देखती जेणें ॥१०६॥ जयाचेनि उजियेडें।
तारागण उबडें। महातेज सुरवाडें। जेणें राहाटे ॥१०७॥ जें आदीची आदी। जें वृद्धीची वृद्धी। बुद्धीची
जें बुद्धी। जीवाचा जीवु ॥१०८॥ जें मनाचें मना। जें नेत्राचे नयना। कानाचे काना। वाचेची वाचा ॥१०९॥
जें प्राणाचा प्राण। जें गतीचे चरणा। क्रियेचें कर्तेपण। जयाचेनि ॥११०॥ आकारु जेणें आकारे।
विस्तारु जेणें विस्तारु। संहारु जेणें संहारे। पांडुकुमरा ॥१११॥ जें मेदिनीची मेदिनी। जे पाणी
पिऊनि असे पाणी। तेजा दिवेलावणी। जेणें तेजें ॥११२॥ जें वायूचा श्वासोश्वासु। जें गगनाचा
अवकाशु। हें असो अघवाचि आभासु। आभासे जेणें ॥११३॥ किंबहुना पांडवा। जें आघवेचि असे
आघवा। जेथ नाहीं रिगावा। द्वैतभावासी ॥११४॥ जें देखिलियाचिसवें। दृश्य द्रष्टा हें आघवे। एकवाट
कालवे। सामरस्यें ॥११५॥ मग तेंचि होय ज्ञाना। ज्ञाता ज्ञेय हना। ज्ञानें गमिजे स्थाना। तेंहि तेंचि
॥११६॥ जैसें सरलियां लेखा। आंख होती एका। तैसें साध्यसाधनादिका। ऐक्यासि ये ॥११७॥ अर्जुना

जिये ठायीं। न सरे द्वैताची वही। हें असो जें हृदयीं। सर्वाचां असे ॥३८॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः। मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

एवं तुजपुढां। आदीं क्षेत्र सुहाडा। दाविलें फाडोवाडां। विवंचुनी ॥३९॥ तैसेंचि क्षेत्रापाठीं। जैसेनि देखसी दिठी। तैसें ज्ञान किरीटी। सांगितलें ॥९४०॥ अज्ञानाही कौतुकें। रूप केलें निकें। जंव आयणी तुझी टेकें। पुरे म्हणे ॥४१॥ आणि आतां हें रोकडें। उपपत्तीचेनि पवाडें। निरूपिलें उघडें। ज्ञेय पें गा ॥४२॥ हे आघवीच विवंचना। बुद्धी भरोनि अर्जुना। मत्सिद्धि भावना। माझिया येती ॥४३॥ देहादिपरिग्रही। संन्यासु करुनियां जिहीं। जीवु माझां ठाई। वृत्तिकु केला ॥४४॥ ते मातें किरीटी। हेंचि जाणोनियां शेवटीं। आपणपयां साटोवटीं। मीचि होती ॥४५॥ मीचि होती परी। हे मुख्य गा अवधारीं। सोहोपी सर्वांपरी। रचिली आम्हीं ॥४६॥ कडां पायरी कीजे। निराळीं माचु बांधिजे। अथावीं सुडजे। तरी जैसी ॥४७॥ एन्हवीं अवघेंचि आत्मा। हें सांगों जरी वीरोत्तमा। तरी तुझिया मनोधर्मा। गिळेल ना ॥४८॥ म्हणोनि एकचि संचलें। चतुर्धा आम्हीं केलें। जें अदळपण देखिलें। तुझिये प्रज्ञे ॥४९॥ पें बाळ जें जेवविजे। तें घांसु विसा ठायीं कीजे। तैसें एकचि चतुर्व्याजें। कथिलें आम्हीं ॥९५०॥ एक क्षेत्र एक ज्ञान। एक ज्ञेय एक अज्ञान। हे भाग केले अवधान। जाणोनि तुझें ॥५१॥ आणि ऐसेनही पार्था। जरी हा आर्भिप्रावो तुज हाता। नये तरी हे व्यवस्था। एक वेळ

सांगों ॥५२॥ आतां चौठायीं न करूं। एकही म्हणोनि न सरूं। आत्मानात्मया धरूं। सरिसा पाडु ॥५३॥ परि तुवां येतुलें करावें। मागौनि तें आम्हां देयावें। जे कानाचि नांव ठेवावें। आपण पें गा ॥५४॥ या श्रीकृष्णाचिया बोला। पार्थु रोमांचितु जाला। तेथ देवो म्हणती भला। उचंबळेना ॥५५॥ ऐसेनि तो येतां वेगु। धरुनि म्हणे श्रीरंगु। प्रकृतिपुरुषविभागु। परिसें सांगों ॥५६॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्व्यनादी उभावपि। विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥१९॥

जया मार्गातें जगीं। सांख्य म्हणती योगी। जयाचिये भाटिवेलागीं। मी कपिल जाहलों ॥५७॥ तो आईक निर्दोखु। प्रकृतिपुरुषविवेकु। म्हणे आदिपुरुखु। अर्जुनातें ॥५८॥ तरी पुरुष अनादि आथी। आणि तेंचि लागोनि प्रकृती। संवसरिसी दिवोराती। दोनी जैसी ॥५९॥ कां रूप नोहे वायां। परी रूपा लागली छाया। निकणु वाढे धनंजया। कणेंसी कोंडा ॥९६०॥ तैसीं जाण जवटें। दोन्ही इयें एकवाटें। प्रकृतिपुरुष प्रकटें। अनादिसिद्धें ॥६१॥ पें क्षेत्र येणें नांवें। जें सांगितलें आघवें। तेंचि एथ जाणावें। प्रकृति हे गा ॥६२॥ आणि क्षेत्रज्ञु ऐसें। जयातें म्हणितलें असे। तो पुरुष हें अनारिसें। न बोलों घेई ॥६३॥ इयें आनानें नांवें। परि निरूप्य आन नोहे। हें लक्षण न चुकावें। पुढतपुढती ॥६४॥ तरी केवळ जे सत्ता। ते पुरुष गा पांडुसुता। प्रकृति तें समस्ता। क्रिया नांव ॥६५॥ बुद्धि इंद्रियें अंतःकरण। इत्यादि विकारभरण। आणि ते तीन्ही गुण। सत्त्वादिक ॥६६॥ हा आघवाचि मेळावा। प्रकृती जाहला जाणावा। हेचि हेतु संभवा। कर्माचिया ॥६७॥ तेथ इच्छा आणि बुद्धि।

घडवी अहंकारेंसीं आधीं। मग तिया लाविती वेधीं। कारणाचां ॥६८॥

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते। पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥

तेंचि कारण ठाकावया। जें सूत्र धरणें उपाया। तया नांव धनंजया। कार्य पैं गा ॥६९॥ आणि
इच्छा मदाचां थावीं। लागली मनातें उठवी। तें इंद्रियें राहाटवी। हें कर्तृत्व पैं ॥९७०॥ म्हणोनि
तिन्ही या जाणा। कार्यकर्तृत्वकारणा। प्रकृति मूळ हे राणा। सिद्धांचा म्हणे ॥७१॥ एवं तिहींचेनि
समवायें। प्रकृति कर्मरूप होये। परि जया गुणा वाढे त्राये। त्याचि सारिखी ॥७२॥ जें सत्त्वगुणें
आर्धिष्ठिजे। तें सत्कर्म म्हणिजे। रजोगुणें निपजे। मध्यम तें ॥७३॥ जें कां केवळें तमें। होती जियें
कर्में। निषिद्धें अधमें। जाण तिये ॥७४॥ ऐसेनि संतासतें। कर्में प्रकृतीस्तव होतें। तयापासोनि
निर्वाळ तें। सुखदुःख गा ॥७५॥ असंतीं दुःख उपजे। सत्कर्मीं सुख निपजे। तया दोहींचा बोलिजे।
भोगु पुरुषा ॥७६॥ सुखदुःखें जंववरी। निफजती साचोकारीं। तंव प्रकृति उद्यमु करी। पुरुषु भोगी
॥७७॥ प्रकृतिपुरुषांची कुळवाडी। सांगतां असंगडी। जे आंबुली जोडी। आमुला खाय ॥७८॥
आमुलया आंबुलिये। संगती ना सोये। कीं आंबुली जग विये। चोज ऐकें ॥७९॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्। कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

जे अनंगु तो पेंधा। निकवडा नुसधा। जीर्णु आर्तिवृद्धा। पासोनि वृद्धु ॥९८०॥ तया आडनांव

पुरुषु। एन्हवीं स्त्री ना नपुंसकु। किंबहुना एका निश्चयो नव्हे ॥८१॥ अचक्षु अश्रवणु। अहस्तु अचरणु।
रूप ना वर्णु। नाम आथी ॥८२॥ अर्जुना कांहींचि जेथ नाहीं। तो प्रकृतीचा भर्ता पाहीं। कीं भोगणें
ऐसयाही। सुखदुःखाचें ॥८३॥ तो तरी अकर्ता। उदासु अभोक्ता। परि इया पतिव्रता। भोगविजे
॥८४॥ जियेतें अळुमाळु। रूपा गुणाचा चाळढाळु। ते भलतैसाही खेळु। लेखा आणी ॥८५॥ मा इये
प्रकृती तंवा। गुणमयी हेंचि नांवा। किंबहुना सावेवा। गुण तेचि हे ॥८६॥ हे प्रकृति क्षणीं नीच नवी।
रूपाचीच आघवी। जडातेंही माजवी। इयेचा माजु ॥८७॥ नांवें इयें प्रसिद्धें। स्नेहो इया स्निग्धें।
इंद्रियें प्रबुद्धें। इयेचेनि ॥८८॥ कायि मन हें नपुंसका। कीं तें भोगवी तिन्ही लोक। ऐसें ऐसें अलौकिका।
करणें इयेचें ॥८९॥ हे भ्रमाचें महाद्वीपा। व्याप्तीचेंचि रूपा। विकार उमपा। इया केले ॥९०॥ हे
कामाची मांडवी। हे मोहवनींची माधवी। इये प्रसिद्धिचि दैवी। माया हें नांव ॥९१॥ हे वाङ्मयाची वाढी।
हे साकारपणाची जोडी। प्रपंचाची धाडी। अभंग हे ॥९२॥ कळा एथूनि जालिया। विद्या इयेचिया
केलिया। इच्छा ज्ञान क्रिया। वियाली हे ॥९३॥ हे नादाची टांकसाळा। हे चमत्काराचें वेळाउळा।
किंबहुना सकळा। खेळु इयेचा ॥९४॥ जे उत्पत्ति प्रलयो होता। ते इयेचे सायंप्राता। हें असो अद्भुता।
मोहन हे ॥९५॥ हे अद्वयाचें दुसरें। हे निःसंगाचें सोयरें। निराळेंसि घरें। नांदत असे ॥९६॥ इयेतें
येतुलावरी। सौभाग्यव्याप्तीची थोरी। म्हणोनि तया आवरी। अनावरातें ॥९७॥ तयाचां तंव ठायीं।
निपटूनि कांहींचि नाहीं। कीं तया आघवेंही। आपणचि होय ॥९८॥ तया स्वयंभाची संभूती। तया

* अमूर्ताची मूर्ती। आपण होय स्थिति। ठावो तया ॥९९॥ तया अनार्ताची आर्ती। तया पूर्णाची तृप्ती। *
 * तया अकुळाची जाता। गोत होय ॥१०००॥ निराकाराचा आकार। तया निर्व्यापाराचा व्यापार। *
 * निरहंकाराचा अहंकार। होऊनि ठाके ॥१॥ तया अचर्चाचें चिन्ह। तया अपाराचें मान। तया *
 * अमनस्काचें मन। बुद्धीही होय ॥२॥ तया अनामाचें नाम। तया अजाचें जन्म। आपण होय कर्म। *
 * क्रिया तया ॥३॥ तया निर्गुणाचे गुण। तया अचरणाचे चरण। तया अश्रवणाचे श्रवण। अचक्षूचे चक्षु *
 * ॥४॥ तया भावातीताचे भाव। तया निरवयवाचे अवयव। किंबहुना होय सर्व। पुरुषाचें हे ॥५॥ ऐसेनि *
 * इया प्रकृती। आपुलिया सर्व व्याप्ती। आविकारातें विकृती-। मार्जी कीजे ॥६॥ तेथ पुरुषत्व जें *
 * असे। तें ये इये प्रकृतिदशे। चंद्रमा अंवसे। पडिला जैसा ॥७॥ विदळ बहु चोखा। मीनलिया वाला *
 * एका। कसु होय पांचिका। जयापरी ॥८॥ कां साधूतें गोंदळी। संचरोनि सुये मैळीं। नाना सुदिनाचा *
 * आभाळीं। दुर्दिनु कीजे ॥९॥ तेथ पय पशूचां पोटीं। का वन्हि जैसा काष्ठीं। गुंडूनि घेतला पटीं। *
 * रत्नदीपु ॥१०१०॥ राजा पराधीनु जाहला। कां सिंह रोगें रुंधला। तैसा पुरुष प्रकृती आला। *
 * स्वतेजा मुके ॥११॥ जागता नरु सहसा। निद्रा पाडूनि जैसा। स्वप्नींचिया सोसा। वश्यु कीजे *
 * ॥१२॥ तैसें प्रकृतिजालेपणें। पुरुषा गुण भोगणें। उदास अंतुरीगुणें। आतुडे जेवीं ॥१३॥ तैसें अजा *
 * नित्या होये। आंगीं जन्ममृत्यूचे घाये। वाजती जें लाहे। गुणसंगातें ॥१४॥ परि तें ऐसें पंडुसुता। *

* तातलें लोह पिटितां। जेवीं वन्हीसीचि घाता। बोलती तया ॥१५॥ कां आंदोळलिया उदका प्रतिभा *
 * होय अनेका। तें नानात्व म्हणती लोक। चंद्रीं जेवीं ॥१६॥ दर्पणाचिया जवळिका। दुजेपण जैसें ये *
 * मुखा। कां कुंकुमें स्फटिका। लोहित्व ये ॥१७॥ तैसा गुणसंगमें। अजन्मा हा जन्मे। पावतु ऐसा गमे। *
 * एहवीं नाहीं ॥१८॥ अधमोत्तमा योनी। यासि ऐसिया मानीं। जैसा संन्यासी होय स्वप्नीं। अंत्यादि *
 * जाती ॥१९॥ म्हणोनि केवळा पुरुषा। नाहीं होणें भोगणें देखा। येथ गुणसंगुचि अशेखा-। लागी मूळ *
 * ॥१०२०॥

* उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः। परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ॥२२॥

* हा प्रकृतिमार्जी उभा। परि जुई जैसा वोथंबा। यया प्रकृति पृथ्वीनभा। तेतुला पाडु ॥२१॥ *
 * प्रकृतिसरितेचां तटीं। मेरु हा किरीटी। मार्जी बिंबे परी लोटीं। लोटों नेणे ॥२२॥ प्रकृति होय जाये। *
 * हा तो असतुचि आहे। म्हणोनि आब्रह्माचें होये। शासन हा ॥२३॥ प्रकृति येणें जिये। याचिया सत्ता *
 * जग विये। इयालागीं इये। वरयतु हा ॥२४॥ अनंतें काळें किरोटी। जिया मिळती इया सृष्टी। तिया *
 * रिगती ययाचां पोटीं। कल्पांतसमयीं ॥२५॥ हा महद्ब्रह्मगोसावी। ब्रह्मगोललाघवी। अपारपणें मवी। *
 * प्रपंचातें ॥२६॥ पै या देहामाझारीं। परमात्मा ऐसी जे परी। बोलिजे तें अवधारीं। ययातेंचि ॥२७॥ *
 * अगा प्रकृतिपरौता। एकु आथी पंडुसुता। ऐसा प्रवादु तो तत्त्वता। पुरुषु हा पै ॥२८॥

* य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह। सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥

जो निखळपणें येणें। पुरुषातें यया जाणे। आणि गुणाचें करणें। प्रकृतीचें तें ॥२९॥ हें रूप हे
छाया। पैल जळ हे माया। ऐसा निवाडु धनंजया। जेवीं कीजे ॥१०३०॥ तेणें पाडें अर्जुना।
प्रकृतिपुरुषविवंचना। जयाचिया मना। गोचर जाहली ॥३१॥ तो शरीराचेनि मेळें। करु कां कर्म
सकळें। परि आकाश धुये न मैळे। तैसा असे ॥३२॥ आथिलेनि देहें। जो न घेपे देहमोहें। देह गेलिया
नोहे। पुनरपि तो ॥३३॥ ऐसा तया एकु। प्रकृतिपुरुषविवेकु। उपकारु अलौकिकु। करी पै गा ॥३४॥
परि हाचि अंतरीं। विवेकभानूचियापरी। उदैजे ते अवधारीं। उपाय बहुत ॥३५॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥

कोणी एकु सुभटा। विचाराचां आगितां। आत्मानात्मकिटा। पुटें देउनी॥३६॥ छत्तीसही वानीभेदा
तोडोनियां निर्विवाद। निवडिती शुद्ध। आपणपें॥३७॥ तया आपणपयाचां पोटीं। आत्मध्यानाचिया
दिठी। देखती गा किरीटी। आपणपेंचि॥३८॥ आणिक पै दैवबगें। चित्त देती सांख्ययोगें। एक ते
अंगलगें। कर्माचेनि॥३९॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते। तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥२५॥

येणें येणें प्रकारें। निस्तरती साचोकारें। हें भवभेउरें। आघवेंचि ॥१०४०॥ परि ते करिती ऐसें।
आर्भिमानु दवडूनि देशें। एकाचिया विश्वासें। टेंकती बोला ॥४१॥ जे हिताहित देखती। हानि कणवा

घेपती। पुसोनि शिणु हरिती। देती सुख ॥४२॥ तयांचेनि मुखें निघे। तेतुलें आदरें चांगें। ऐकोनियां
आंगें। मनें होती ॥४३॥ तया ऐकणेयाचि नांवें। ठेविती गा आघवें। तया अक्षरांसी जीवें। लोण
करिती ॥४४॥ तेही अंतीं कपिध्वजा। इया मरणार्णवसमाजा-। पासूनि निघती वोजा। गोमटिया
॥४५॥ ऐसेसे हे उपाये। बहुवस एथें पाहे। जाणावया होये। एकी वस्तु ॥४६॥ आतां पुरे हें बहुत।
पें सर्वार्थाचें मथिता। सिद्धांतनवनीता। देऊं तुज ॥४७॥ येतुलेनि पंडुसुता। अनुभव लाहाणा आयिता।
येर तंव तुज होतां। सायास नाहीं ॥४८॥ म्हणोनि बुद्धि रचूं। मतवाद हे खाचूं। सोलींव निर्वचूं।
फलितार्थुचि ॥४९॥

यावत् संजायते किञ्चित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्। क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

तरी क्षेत्रज्ञ येणें बोलें। तुज आपणपें जें दाविलें। आणि क्षेत्र सांगितलें। आघवें जें ॥१०५०॥
तया येरयेरांचां मेळीं। होइजे भूतीं सकळीं। आर्निंलसंगें जळीं। कल्लोळ जैसें ॥५१॥ कां तेजा आणि
उखरा। भेटी जालिया वीरा। मृगजळाचिया पूरा। रूप होय ॥५२॥ नाना धाराधरधारीं। झळंबलिया
वसुंधरी। उठिजे जेवीं अंकुरीं। नानाविधीं ॥५३॥ तैसें चराचर आघवें। जें कांहीं जीवु नांवें। तें तों
उभययोगें संभवे। ऐसें जाण ॥५४॥ इयालागीं अर्जुना। क्षेत्रज्ञाप्रधाना। पासूनि न होती भिन्ना।
भूतव्यक्ति ॥५५॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

पैं पटत्व तंतु नव्हे। तरि तंतूसीचि तें आहे। ऐसां खोलीं डोळां पाहें। ऐक्य हें गा ॥५६॥ भूतें
आघवींचि होती। एकाचीं एक आहाती। परी पैं भूतप्रतीतीं। वेगळीक असे ॥५७॥ यांचीं नामेंही
आनानें। अनारिसीं वर्तनें। वेषही सिनाने। आघवेयांचे ॥५८॥ ऐसें देखोनि किरीटी। भेद सूसी हन
पोटीं। तरि जन्माचिया कोटी। न लाहसी निघों ॥५९॥ पैं नानाप्रयोजनशीळें। दीर्घें वक्रें वर्तुळें। होती
एकीचींच फळें। तुंबिणीयेचीं ॥१०६०॥ होतु का उजू वांकुडें। परि बोरीचें हें न मोडे। तैसीं भूतें
अवघडें। वस्तु उजू ॥६१॥ अंगारकणीं बहुवसीं। उष्णता समान जैसी। तैसा नाना जीवराशीं। परेशु
असे ॥६२॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्। न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥

गगनभरी धारा। परी पाणी एकचि वीरा। तैसा या भूताकारा। सर्वांगीं तो ॥६३॥ हे भूतग्राम
विषम। परी वस्तू ते एथ समा घटमठीं व्योम। जियापरी ॥६४॥ हा नाशतां भूताभासु। एथ आत्मा
तो आर्विनाशु। जैसा केयूरादिकीं कसु। सुवर्णाचा ॥६५॥ एवं जीवधर्महीनु। जो जीवासीं आर्भिन्नु।
देखे तो सुनयनु। ज्ञानियांमार्जीं ॥६६॥ ज्ञानाचा डोळा डोळसां-। मार्जीं डोळसु तो वीरेशा। हे स्तुति
नोहे बहुवसा। भाग्याचा तो ॥६७॥ जे गुणेंद्रियधोकटी। देह धातूंची त्रिकुटी। पांचमेळावा वोखटी।
दारुण हे ॥६८॥ हे उघड पांचवेउली। हे पंचधा आगी लागली। जीवपंचानना सांपडली। हरिणकुटी

हे ॥६९॥ ऐसा असोनि इये शरीरीं। कोण नित्यबुद्धीची सुरी। आर्नित्यभावाचां उदरीं। दाटीचिना
॥१०७०॥ परी इये देहीं असतां। जो नयेचि आपणया घाता। आणि शेखीं पंडुसुता। तेथेंचि मिळे
॥७१॥ जे योगज्ञानाचिया प्रौढी। वोलांडूनियां जन्मकोडी। न निगों इया भाषा बुडी। देती योगी
॥७२॥ जें आकाराचें पैल तीरा। जें नादाची पैल मेरा। तुर्येचें माजघरा। परब्रह्म जें ॥७३॥ मोक्षासकट
गती। जेथें येती विश्रांती। गंगादि अपांपती। सरिता जेवीं ॥७४॥ तें सुख येणेंचि देहें। पायपाखाळणिया
लाहे। जो भूतवैषम्यें नोहे। विषमबुद्धी ॥७५॥ दीपांचां कोडीं जैसें। एकचि तेज सरिसें। तैसा जो
असे। सर्वत्र ईशु ॥७६॥ ऐसेनि समत्वे पंडुसुता। जिये जो देखतसाता। तो मरणा आणि जीविता।
नागवे फुडा ॥७७॥ म्हणोनि तो दैवागळा। वानीत असों वेळोवेळां। जे साम्यसेजे डोळा। लागला तया
॥७८॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः। यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

आणि मनोबुद्धिप्रमुखें। कर्में द्रियें अशेखें। करी प्रकृतीचि हें देखे। साचें जो गा ॥७९॥ घरींचीं
रहाटती घरीं। घर कांहीं न करी। अभ्र धांवे अंबरीं। अंबर उगें ॥१०८०॥ तैसी प्रकृति आत्मप्रभा।
खेळे गुणीं विविधारंभा। येथ आत्मा तो वोथंबा। नेणे कोण ॥८१॥ ऐसेनि येणें निवाडें। जयाचां जीवीं
उजिवडें। अकर्तयातें फुडें। देखिलें तेणें ॥८२॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति। तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

एन्हवीं तेंचि अर्जुना॥ होईजे ब्रह्मसंपन्ना॥ जें या भूताकृती भिन्ना॥ दिसती एकी ॥८३॥ लहरी
 जैसिया जळीं॥ परमाणुकणिका स्थळीं॥ रश्मीकर मंडळीं॥ सूर्याचां ॥८४॥ नातरी देहीं अवेवा मनीं
 आघवेचि भावा॥ विस्फुलिंग सावेवा॥ वन्हीं एकीं ॥८५॥ तैसे भूताकार एकाचे॥ हे दिठी रिगे जें साचें॥
 तेंचि ब्रह्मसंपत्तीचें॥ तारुं लागे ॥८६॥ मग जयातयाकडे॥ ब्रह्मचि दिठी उघडे॥ किंबहुना जोडे॥
 अपार सुख ॥८७॥ येतुलेनि तुज पार्था॥ प्रकृतिपुरुषव्यवस्था॥ ठायेंठावो प्रतीतिपथा-॥ मार्जी
 जाहली ॥८८॥ अमृत जैसें ये चुळा॥ कां निधान देखिजे डोळां॥ तेतुला जिव्हाळा॥ मानावा गा
 ॥८९॥ हा जी जाहलिये प्रतीती॥ घर बांधणें जें चितीं॥ तें आतां ना सुभद्रापती॥ इयावरी ॥९०९०॥
 तरी एकदोन्ही ते बोल॥ बोलिजती सखोल॥ देई मनातें वोला॥ मग ते घेई ॥९१॥ ऐसें देवें म्हणितलें॥
 मग बोलों आदरिलें॥ तेथें अवधानाचेंचि केलें॥ सर्वांग येरें ॥९२॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्ययः। शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

म्हणे परमात्मा म्हणिपे॥ तो ऐसा जाण स्वरूपें॥ जळीं जळें न लिपे॥ सूर्यु जैसा ॥९३॥ कां जे
 जळा आदीं पाठीं॥ सूर्य असतुचि असे किरीटी॥ मार्जी बिंबे तें दृष्टी॥ आणिकांचिये ॥९४॥ तैसा
 आत्मा देहीं॥ आथि म्हणिपे हें कांहीं॥ साचें तरी नाहीं॥ तो जेथिंचा तेथें ॥९५॥ आरिसां मुख जैसें॥
 बिंबलिया नाम असे॥ देहीं वसणें तैसें॥ आत्मतत्त्वा ॥९६॥ तया देहा म्हणती भेटी॥ सपायी निर्जिव

गोठी॥ वारिया वाळुवे गांठी॥ केंही आहे ॥९७॥ आगी आणि पीसा॥ दोरा सुवावा कैसा॥ केउता सांदा
 आकाशा॥ पाषाणेंसी ॥९८॥ एक निघे पूर्वेकडे॥ एक तें पश्चिमेकडे॥ तिये भेटीचेनि पाडें॥ संबंधु हा
 ॥९९॥ उजिवडा आणि अंधारेया॥ जो पाडु मृता उभया॥ तोचि गा आत्मया॥ देहा जाण ॥१००॥
 रात्री आणि दिवसा॥ कनका आणि कापुसा॥ अपाडु कां जैसा॥ तैसाचि हा ॥१०१॥ देह तंव पांचांचें
 जालें॥ हें कर्माचां गुणीं गुंथलें॥ भंवतसे चाकी सूदलें॥ जन्ममृत्यूचां ॥१०२॥ हें काळानळाचां कुंडीं॥
 घातली लोणियाची उंडी॥ माशी पांखु पाखडी॥ तंव हें सरे ॥१०३॥ हें विपायें आगी पडे॥ तरी भस्म
 होऊनि उडे॥ जाहलें श्वाना वरपडें॥ तरी ते विष्टा ॥१०४॥ या चुके दोन्हीं काजा॥ तरी होय कृमींचा
 पुंजा॥ हा परिणामु कपिध्वजा॥ कश्मलु गा ॥१०५॥ या देहाची हे दशा॥ आणि आत्मा तो एथ ऐसा॥ पै
 नित्य सिद्ध आपैसा॥ अनादिपणें ॥१०६॥ सकळु ना निष्कळु॥ आर्क्रियु ना क्रियाशीळु॥ कृश ना स्थूळु॥
 निर्गुणपणें ॥१०७॥ आभासु ना निराभासु॥ प्रकाशु ना अप्रकाशु॥ अल्प ना बहुवसु॥ अरूपपणें ॥१०८॥
 रिता ना भरितु॥ रहितु ना सहितु॥ मूर्तु ना अमूर्तु॥ शून्यपणें ॥१०९॥ आनंदु ना निरानंदु॥ एकु ना विविधु॥
 मोकळा ना बद्धु॥ आत्मपणें ॥११०॥ येतुला ना तेतुला॥ आइता ना रचिला॥ बोलता ना उगला॥
 अलक्षपणें ॥१११॥ सृष्टीचां होणां न रचे॥ सर्वसंहारें न वेंचे॥ आथी नाथी या दोहींचें॥ पंचत्व तो
 ॥११२॥ मवे ना चर्चे॥ वाढे ना खांचे॥ विटे ना वेंचे॥ अव्ययपणें ॥११३॥ एवरूप पै आत्मा॥ देहीं जें
 म्हणती प्रियोत्तमा॥ तें मठाकारें व्योमा॥ नाम जैसें ॥११४॥ तैसें तयाचिये अनुस्यूती॥ होती जाती

देहाकृती। तो घे ना सांडी सुमती। जैसा तैसा ॥१५॥ अहोरात्रं जैशीं। येती जाती आकाशीं।
आत्मसत्ते तैसीं। देहें जाण ॥१६॥ म्हणोनि इये शरीरीं। कांहीं करवी ना करी। आयताही व्यापारीं।
सज्जु नव्हे ॥१७॥ यालागीं स्वरूपें। उणा पुरा न घेपे। हें असो तो न लिपे। देहीं देहा ॥१८॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते। सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

अगा आकाश कें नाहां। हें न रिघेचि कवणे ठायीं। परि कायिसेनि कहीं। गादिजेना जैसें ॥१९॥
तैसा सर्वत्र सर्व देहीं। आत्मा असतुचि असे पाहीं। संगदोषें एकेंही। लिमु नव्हे ॥१९२०॥ पुढतपुढती
एथें। हेंचि लक्षण निरुतें। जे जाणावें क्षेत्रज्ञातें। क्षेत्रविहिना ॥२१॥ संसर्गें चेष्टिजे लोहें। परि लोह
भ्रामक नोहे। क्षेत्रक्षेत्रज्ञां आहे। तेतुला पाडु ॥२२॥ दीपकाची अर्ची। राहाटी वाहे घरीची। परी
वेगळीक कोडीची। दीपा आणि घरा ॥२३॥ काष्ठांचां पोटीं। वन्हि असे किरीटी। परी काष्ठ नोहे या
दिठी। पाहिजे गा ॥२४॥ अपाडु नभा आभाळा। रवि आणि मृगजळा। तैसाचि हाही डोळां। देखसी
जरी ॥२५॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

हें आघवेंचि असो एका गगनौनि जैसा अर्कु। प्रगटवी लोका नावें नावें ॥२६॥ एथ क्षेत्रज्ञु तो
ऐसा। प्रकाशकु क्षेत्राभासा। यावरुतें हें न पुसा। शंका नेघा ॥२७॥ शब्दतत्त्वसारज्ञा। पें देखणी तेचि

प्रज्ञा। जे क्षेत्र क्षेत्रज्ञा। अपाडु देखे ॥२८॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा। भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥३४॥

इया दोहींचें अंतरा देखावया चतुरा ज्ञानियांचें द्वारा आराधिती ॥२९॥ याचिलागीं सुमती।
जोडिती शांतिसंपती। शास्त्रांचीं दुभतीं। पोसिती घरीं ॥१९३०॥ योगाचिया आकाशा। वळघिजे
येवढाचि धिंवसा। याचियाचि आशा। पुरुषासि गा ॥३१॥ शरीरादि समस्त। मानिताति तृणवत।
जीवें संतांचें होता वाहणधरु ॥३२॥ ऐसैसियापरी। ज्ञानाचिया भरोवरी। करुनियां अंतरीं। निरुते
होत ॥३३॥ मग क्षेत्रज्ञा क्षेत्राचें। जे अंतर देखती साचें। ज्ञानें उन्मेख तयांचें। वोवाळूं आम्ही ॥३४॥
आणि महाभूतादिकीं। प्रभेदलीं अनेकीं। पसरलीसे लटिकी। प्रकृति जे हे ॥३५॥ ते शुकनळिकान्यायें।
न लगती लागली आहे। हें जैसें तैसें होये। ठाउवें जयां ॥३६॥ जैसी माळा ते माळा। ऐसीचि देखिजे
डोळां। सर्पबुद्धि टवाळा। उखी होउनी ॥३७॥ कां शुक्ति ते शुक्ती। हे साच होय प्रतीती। रुपयेची
भ्रांती। जाऊनियां ॥३८॥ तैसी वेगळी वेगळेपणें। प्रकृति जे अंतःकरणें। देखती ते मी म्हणें। ब्रह्म
होती ॥३९॥ जें आकाशाहूनि वाडा। जें अव्यक्ताची पैल कडा। जें भेटलिया अपाडा पाडा। पडों नेदी
॥१९४०॥ आकारु जेथ सरे। जीवत्व जेथें विरे। द्वैत जेथ नुरे। अद्वय जें ॥४१॥ तें परमतत्त्व पार्था।
होती ते सर्वथा। जे आत्मानात्मव्यवस्था। राजहंसु ॥४२॥ ऐसा हा जी आघवा। श्रीकृष्णें तया
पांडवा। उगाणा दिधला जीवा। जीवाचिया ॥४३॥ येर कलशीचें येरीं। रिचविजे जयापरी। आपणपें

* तया हरी। दिधलें तैसें ॥४४॥ आणि कोणा देता कोणा। तो नर तैसा नारायण। वरी अर्जुनातें कृष्ण। *
 * हा मी म्हणे ॥४५॥ परि असो तें नाथिलें। न पुसतां कां मी बोलें। किंबहुना दिधलें। सर्वस्व देवें *
 * ॥४६॥ कीं तो पार्थु जी मनीं। अझुनी तृप्ती न मनी। आर्धिकाधिक उतान्ही। वाढवीतु असे ॥४७॥ *
 * स्नेहाचिया भरोवरी। आंबुथिला दीपु घे थोरी। चाड अर्जुना अंतरीं। परिसतां तैसी ॥४८॥ तेथ *
 * सुगरणी उदारे। रसज्ञ आणि जेवणारे। मिळती मग अवतरे। हातु जैसा ॥४९॥ तैसें जी होतसे देवा। *
 * तया अवधानाचिया लवलवा। पाहातां व्याख्यान चढलें थांवा। चौगुणें वरी ॥५०॥ सुवायें मेघु *
 * सांवरे। जैसा चंद्रें सिंधु भरे। तैसा मातुला रसु आदरें। श्रोतयाचेनि ॥५१॥ आतां आनंदमय आघवें। *
 * विश्व कीजेल देवें। तें रायें परिसावें। संजयो म्हणे ॥५२॥ एवं जे महाभारतीं। श्रीव्यासें अप्रांतमती। *
 * भीष्मपर्वी शांती। म्हणितली कथा ॥५३॥ तो कृष्णार्जुनसंवादु। नागरीं बोलीं विशदु। सांगोनि दाऊं *
 * प्रबंधु। वोवियेचा ॥५४॥ नुसधीचि शांतिकथा। आणिजेल कीर वाक्पथा। जे श्रृंगाराचां माथां। पाय *
 * ठेविती ॥५५॥ दाऊं वेल्हाळे देशी नवी। जे साहित्यातें वोजावी। अमृतातें चुकी ठेवी। गोडिसेपणें *
 * ॥५६॥ बोल वोल्हावतेनि गुणें। चंद्रासि घे उमाणे। रसरंगीं भुलवणें। नादु लोपी ॥५७॥ खेचराचियाही *
 * मना। आणी सात्त्विकाचा पान्हा। श्रवणासवें सुमना। समाधि जोडे ॥५८॥ तैसा वाग्विलास विस्तारूं। *
 * गीतार्थें विश्व भरूं। आनंदाचें आवारूं। मांडूं जगा ॥५९॥ फिटो विवेकाची वाणी। हो कानामनाची *

* जिणी। देखो आवडे ते खाणी। ब्रह्मविद्येची ॥५९६०॥ दिसो परतत्त्व डोळां। पाहो सुखाचा सोहळा। *
 * रिघो महाबोधसुकाळा। मार्जीं विश्व ॥५९७॥ हें निफजेल आतां आघवें। ऐसें बोलिजेल बरवें। जे *
 * आर्धिष्ठिला असें परमदेवें। निवृत्ती मी ॥५९८॥ म्हणोनि अक्षरीं सुभेदीं। उपमाश्लोक कोंदाकोंदी। *
 * झाडा देईन प्रतिपदीं। ग्रंथार्थासी ॥५९९॥ हा ठावोवरी मातें। पुरतया सारस्वतें। केलें असे श्रीमंतें। *
 * श्रीगुरुरायें ॥६०॥ तेणें जी कृपासावायें। मी बोलें तेतुलें सामायें। आणि तुमचिये सभे लाहें। गीता *
 * म्हणों ॥६१॥ वरि तुम्हां संतांचे पाये। आजि मी पातलां आहें। म्हणोनि जी नोहे। अटकु कांहीं *
 * ॥६२॥ प्रभु काश्मिरीं मुकें। नुपजे हें कौतुकें। नाहीं उणीं सामुद्रिकें। लक्ष्मीयेसी ॥६३॥ तैसी तुम्हां *
 * संतांपासीं। अज्ञानाची गोठी कायसी। यालागीं नवरसीं। वरुषेन मी ॥६४॥ किंबहुना आतां देवा। *
 * अवसरु मज देयावा। ज्ञानदेव म्हणे बरवा। सांगेन ग्रंथु ॥५९९९॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्रकृतिपुरुष-विवेकयोगो नाम

त्रयोदशोऽध्यायः॥ (श्लोक ३४; ओव्या ११६९.)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय चौदावा

जय जय आचार्या। समस्तसुरवर्या। प्रज्ञाप्रभातसूर्या। सुखोदया ॥१॥ जय जय सर्व विसांवया।
सोहंभावसुहावया। नाना लोक हेलावया। समुद्रा तूं ॥२॥ आइकें गा आर्तबंधू। निरंतरकारुण्यसिंधू।
विशदविद्यावधू। वल्लभा जी ॥३॥ तूं जयांप्रति लपसी। तयां जग हें दाविसी। प्रकटु तें करिसी।
आघवेंचि तूं ॥४॥ कीं पुढिलाची दृष्टि चोरिजे। हा दृष्टिबंधु निफजे। परी नवल लाघव तुझें। जें
आपणपें चोरे ॥५॥ जे तूंचि तूं सर्वा यया। मा कोणा बोधु कोणा माया। ऐसिया आपेंआप लाघविया।
नमों तुज ॥६॥ जाणों जगीं आप वोलें। तें तुझिया बोला सुरस जालें। तुझेनि क्षमत्व आलें।

पृथ्वीयेसी ॥७॥ रविचंद्रादि शुक्ति। उदो करिती त्रिजगतीं। तें तुझिया दीप्ती। तेज तेजां ॥८॥
चळवळिजे आर्निळें। तें दैविकेनि जी निजबळें। नभ तुजमाजीं खेळे। लपीथपी ॥९॥ किंबहुना माया
असोसा। ज्ञान जी तुझेनि डोळसा। असो वानणें सायासा। श्रुतीसि हें ॥१०॥ वेद वानूनि तंव चांगा। जंव
न दिसे तुझें आंगा। मग आम्हां तया मूगा। एकी पांती ॥११॥ जी एकार्णवाचां ठाई। पाहतां थेंबांचा
पाडु नाहीं। मा महानदी काई। जाणिजती ॥१२॥ कां उदयलिया भास्वतु। चंद्र जैसा खद्योतु। आम्हां
श्रुती तुजआंतु। तो पाडु असे ॥१३॥ आणि दुजया थांवो मोडे। जेथ परेशीं वैखरी बुडे। तो तूं मा
कोणें तोंडें। वानावासी ॥१४॥ यालागीं आतां। स्तुति सांडूनि निवांता। चरणीं ठेविजे माथा। हेंचि
भलें ॥१५॥ तरी तुज तैसिया। नमो जी श्रीगुरुराया। मज ग्रंथोद्यमु फळावया। वेव्हारा होई ॥१६॥
आतां कृपाभांडवल सोडीं। भरीं मति माझी पोतडी। करीं ज्ञानपद्यजोडी। थोरा मातें ॥१७॥ मग मी
संसरेन तेणें। करीन संतांसी कर्णभूषणें। लेववीन सुलक्षणें। विवेकाचीं ॥१८॥ जी गीतार्थनिधान।
काढू माझें मन। सुयीं स्नेहांजना। आपलें तूं ॥१९॥ हे वाक्सृष्टि एके वेळे। देखतु माझे बुद्धीचे डोळे।
तैसा उदैजो जी निर्मळें। कारुण्यबिंबें ॥२०॥ माझी प्रज्ञावेली वेलहाळ। काव्यें होय सुफळा। तो वसंतु
होय स्नेहाळ। शिरोमणी ॥२१॥ प्रमेयमहापूरें। मतिगंगा ये थोरे। तैसा वरिष उदारे। दिठीवेनी
॥२२॥ अगा विश्वैकधामा। तुझा प्रसादुचंद्रमा। करु मज पूर्णिमा। स्फूर्तीची जी ॥२३॥ जी
अवलोकिलिया मातें। उन्मेषसागरीं भरितें। वोसंडेल स्फूर्तीतें। रसवृत्तीचे ॥२४॥ तंव तोषोनि गुरुराजें।

* म्हणितलें विनतिव्याजें। मांडिलें देखो दुजें। स्तवनमिषें ॥२५॥ हें असो आतां वांजटा। तो ज्ञानार्थ *
 * करुनि गोमटा। ग्रंथु दावीं उत्कंठा। भंगों नेदीं ॥२६॥ हो कां जी स्वामी। हेंचि पाहतु होतों मी। जे *
 * श्रीमुखें म्हणा तुम्हीं। ग्रंथु सांग ॥२७॥ सहजें दुर्वेचा हिरु। आंगेंचि तंव अमरु। वरी आला पूरु। *
 * पीयुषाचा ॥२८॥ तरी आतां येणें प्रसादें। विन्यासें विदग्धें। मूलशास्त्रपदें। वाखाणीन ॥२९॥ परी *
 * जीवा आंतुलीकडे। जैसी संदेहाची डोणी बुडे। ना श्रवणीं तरी चाडे। वाढु दिसे ॥३०॥ तैसी बोली *
 * साचारी। अवतरो माझी माधुरी। माले मागूनि घरीं। गुरुकृपेचां ॥३१॥ तरी मागां त्रयोदशीं। अध्यायीं *
 * गोष्टि ऐसी। श्रीकृष्णु अर्जुनेसी। चावळले ॥३२॥ जे क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगें। होइजे येणें जगें। आत्मा गुणसंगें। *
 * संसारिया ॥३३॥ आणि हाचि प्रकृतिगतु। सुखदुःखभोगीं हेतु। अथवा गुणातीतु। केवळु हा ॥३४॥ *
 * तरी कैसा पां असंगा संगु। कोण तो क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगु। सुखदुःखादि भोगु। केवीं तया ॥३५॥ गुण ते *
 * कैसे किती। बांधती कवणे रीती। नातरी गुणातीतीं। चिन्हें काई ॥३६॥ एवं यया आघवेया। अर्था *
 * रूप करावया। विषो एथ चौदाविया। अध्यायासी ॥३७॥ तरि तो आतां ऐसा। प्रस्तुत परियेसा। *
 * आर्भिप्रावो विश्वेशा। वैकुंठाचा ॥३८॥ तो म्हणे गा अर्जुना। अवधानाची सर्व सेना। मेळौनि झ्या *
 * ज्ञाना। झोंबावें हो ॥३९॥ आम्हीं मागां तुज बहुतीं। दाविलें हें उपपत्तीं। तरी आझुनी प्रतीती। कुशी *
 * न निघे ॥४०॥

* **श्रीभगवानुवाच :** परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्। यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥ *
 * म्हणौनि गा पुढती। सांगिजेल तुजप्रती। पर म्हण म्हणो श्रुतीं। डाहारिलें जें ॥४१॥ एन्हवीं ज्ञान *
 * हें आपुलें। परि पर ऐसेनि जालें। जे आवडोनि घेतलें। भवस्वर्गादिक ॥४२॥ अगा याचि कारणें। हें *
 * उत्तम सर्वापरी मी म्हणें। जे वन्हि हें तृणें। येरें ज्ञानें ॥४३॥ जियें भवस्वर्गातें जाणती। यागचि चांग *
 * म्हणती। पारखी फुडी आथी। भेदीं जेयां ॥४४॥ तियें आघवींचि ज्ञानें। केलीं येणें स्वप्नें। जैशा *
 * वातोर्मी गगनें। गिळिजती अंतीं ॥४५॥ कां उदितें रश्मिराजें। लोपिलीं चंद्रादि तेजें। नाना प्रळयांबुमाजें। *
 * नदी नद ॥४६॥ तैसें हें येणें पाहलेया। ज्ञानजात जाय लया। म्हणोनियां धनंजया। उत्तम हें ॥४७॥ *
 * अनादि जे मुक्तता। आपुली असे पंडुसुता। तो मोक्षु हाता येता। होय येणें ॥४८॥ जयाचिया *
 * प्रतीती। विचारवीरीं समस्तीं। नेदिजेचि संसृती। माथां उधळुं ॥४९॥ मनं मन घालूनि मागें। *
 * विश्रांति जालिया आंगें। ते देहीं देहाजोगे। होतीचि ना ॥५०॥ मग तें देहाचें बेळें। वोलांडूनि एकेचि *
 * वेळे। संवतुकी कांटाळें। माझें जाले ॥५१॥

* इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः। सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥२॥ *
 * जे माझिया नित्यता। तेणें नित्य ते पंडुसुता। परिपूर्ण पूर्णता। माझियाचि ॥५२॥ मी जैसा *
 * अनंतानंदु। जैसाचि सत्यसिंधु। तैसेचि ते भेदु। उरेचि ना ॥५३॥ जें मी जेवढें जैसें। तेंचि ते जाले *
 * तैसें। घटभंगीं घटाकाशें। आकाश जेवीं ॥५४॥ नातरी दीपमूळकीं। दीपशिखा अनेकी। मीनलिया

* अवलोकीं। होय जैसें ॥५५॥ अर्जुना तयापरी। सरली द्वैताची वारी। नांदो नामार्थ एकाहारीं। *
 * मीतूविण ॥५६॥ येणेचि पै कारणें। जें पहिलें सृष्टीचें जुंपणें। तें ही तया होणें। पडेचिना ॥५७॥ *
 * सृष्टीचिये सर्वादी। जेयां देहाची नाहीं बांधी। तें कैचें प्रळयावधी। निमतील पां ॥५८॥ म्हणौनि *
 * जन्मक्षयां। अतीत ते धनंजया। मी जाले ज्ञाना यया। अनुसरोनी ॥५९॥ ऐसी ज्ञानाची वाढी। *
 * वानिली देवें आवडी। तेवींचि पार्थाही गोडी। लावावया ॥६०॥ तंव तया जालें आना। सर्वागीं निघाले *
 * काना सपाई अवधान। आतला पां ॥६१॥ आतां देवाचिया ऐसें। जाकळीजतु असे वोरसें। म्हणौनि *
 * निरूपण आकाशें। वेंटाळेना ॥६२॥ मग म्हणे गा प्रज्ञाकांता। उजवली आजि वक्तृत्वता। जे बोलायेवढा *
 * श्रोता। जोडलासि ॥६३॥ तरि एकु मी अनेकीं। गोंविजे देहपाशकीं। त्रिगुणीं लुब्धकीं। कोणी परी *
 * ॥६४॥ कैसा क्षेत्रयोगें। वियें इयें जगें। तें परिस सांगें। कोणे परी ॥६५॥ पै क्षेत्र येणें व्याजें। हें *
 * यालागीं बोलिजे। जे मत्संगबीजें। भूतीं पिके ॥६६॥ *

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

* एहवीं तरी महद्ब्रह्म। यालागीं हें ऐसें नाम। जे महदादिविश्राम। शालिका हें ॥६७॥ विकारां *
 * बहुवस थोरी। अर्जुना हेंचि करी। म्हणोनि अवधारीं। महद्ब्रह्म ॥६८॥ अव्यक्तवादमतीं। अव्यक्त *
 * ऐसी वदंती। सांख्याचिया प्रतीती। प्रकृति हेचि ॥६९॥ वेदांतीं यातें माया। ऐसें म्हणिजे प्राज्ञराया। *

* असो किती बोलों वायां। अज्ञान हें ॥७०॥ आपुला आपणपेयां। विसरु जो धनंजया। तेंचि रूप यया। *
 * अज्ञानासी ॥७१॥ आणिकही एक असे। जें विचारावेळे न दिसे। वातीं पाहतां जैसें। आंधारें कां *
 * ॥७२॥ हालविलिया जाये। निश्चळीं तरी होये। दुधीं जैसी साये। दुधाची ते ॥७३॥ पै जागरु ना *
 * स्वप्न। ना स्वरूपअवस्थान। ते सुषुप्ति कां घना जैसी होय ॥७४॥ कां न वियतां वायूतें। वांझें *
 * आकाश रितें। तयाऐसें निरुतें। अज्ञान गा ॥७५॥ पैल खांब कां पुरुखु। ऐसा निश्चयो नाहीं एकु। परी *
 * काय नेणो आलोकु। दिसत असे ॥७६॥ तेवीं वस्तु जैसी असे। तैसी कीर न दिसे। परी कांहीं *
 * अनारिसें। देखिजेना ॥७७॥ ना राती ना तेजा ते संधि जेवीं सांज। तेवीं विरुद्ध ना निज। अज्ञान *
 * आथी ॥७८॥ ऐसी कोणही एकी दशा। तिये वादु अज्ञान ऐसा। तया गुंडलिया प्रकाशा। क्षेत्रज्ञु नांव *
 * ॥७९॥ अज्ञान थोरिये आणिजे। आपणपें तरी नेणिजे। तें रूप जाणिजे। क्षेत्रज्ञाचें ॥८०॥ हाचि *
 * उभय योगु। बुझें बापा चांगु। सत्तेचा नैसर्गु। स्वभावो हा ॥८१॥ आतां अज्ञानासारिखें। वस्तु *
 * आपणपेंचि देखे। परी रूपें अनेकें। नेणें कोणें ॥८२॥ जैसा रंकु भ्रमला। म्हणे जा रे मी रावो आला। *
 * कां मूर्च्छितु गेला। स्वर्गलोका ॥८३॥ तेवीं लचकलिया दिठी। मग देखणें जें जें उठी। तया नांव *
 * सृष्टी। मीचि वियें पै गा ॥८४॥ जैसें कां स्वप्नमोहा। तो एकाकी देखिजे बहुवा। तोचि पाडु आत्मया। *
 * स्मरणेंवीण असे ॥८५॥ हेंचि आनी भांती। प्रमेय उपलवूं पुढती। परी तूं प्रतीती। याचि घे पां ॥८६॥ *
 * तरी माझी हे गृहिणी। अनादि तरुणी। आर्निर्वाच्यगुणी। आर्विद्या हे ॥८७॥ इये नाहीं हेंचि रूपा ठाणें *

* हें आर्ति उमपा। हें निद्रितां समीपा। चेतां दुरी ॥८८॥ पै माझेनिचि आंगें। पौढल्या हे जागे। आणि *
 * सत्तासंभोगें। गुर्विणी होय ॥८९॥ महद्ब्रह्माउदरीं। प्राकृतीं आठै विकारीं। गर्भाची करी। पेलोवेली *
 * ॥९०॥ उभयसंगु पहिलें। बुद्धितत्त्व प्रसवलें। बुद्धितत्त्व भारेलें। होय मन ॥९१॥ तरुणी ममता *
 * मनाची। ते अहंकार तत्त्व रची। तेणें महाभूतांची। आर्भिव्यक्ति होय ॥९२॥ आणि विषयेंद्रियां गोसी। *
 * स्वभावे तंव भूतांसी। म्हणोनि येती सरिसीं। तियेही रूपा ॥९३॥ जालेनि विकारक्षोभें। पाठीं *
 * त्रिगुणाचें उभें। तेव्हां ये वासनागर्भें। ठायें ठावो ॥९४॥ रुखाचा आवांका। जैसी बीजकणिका। जीवीं *
 * बांधे उदका। भेटतखेंवो ॥९५॥ तैसी माझेनि संगें। आर्विद्या नाना जगें। आर घेवों लागे। आर्णियाची *
 * ॥९६॥ मग गर्भगोळा तया। कैसें रूप तें ये आया। तें परियेसें राया। सुजनांचिया। ॥९७॥ पै मणिज *
 * स्वेदज। उद्भिज जारज। उमटती सहज। अवेव हे ॥९८॥ व्योमवायुवशें। वाढलेनि गर्भरसें। मणिजु *
 * उससे। अवेवु तो ॥९९॥ पोटीं सूनि तमरजें। आगळिकां तोय तेजें। उठितां निफजे। स्वेदजु मा *
 * ॥१००॥ आपपृथ्वीउत्कटें। आणि तमोमात्रें निकृष्टें। स्थावरु उमटे। उद्भिजु हा ॥१०१॥ पांचां पांचही *
 * विरजीं। होती मनबुद्ध्यादि सार्जीं। हीं हेतु जारजीं। ऐसें जाण ॥१०२॥ ऐसे चारी हे सरळा। करचरणतळा। *
 * महाप्रकृति स्थूळा तेंचि शिर ॥१०३॥ प्रवृत्ति पेललें पोटा। निवृत्ति ते पाठी नीटा। सुरयोनी आंगें आठा। *
 * ऊर्ध्वाचीं ॥१०४॥ कंदु उल्हासता स्वर्गु। मृत्युलोकु मध्यअर्धभागु। अधोदेशु चांगु। नितंबु तो ॥१०५॥ ऐसें *

* लेंकरुं एका। प्रसवली हे देखा। जयाचें तिन्ही लोका। बाळसें गा ॥१०६॥ चौन्यांयशी लक्ष योनी। तियें *
 * कांडां पेरां सांदणी। वाढे प्रतिदिनीं। बाळक हें ॥१०७॥ नाना देह अवयवीं। नामाचीं लेणीं लेववी। *
 * मोहस्तन्यें वाढवी। नीच नवेन ॥१०८॥ सृष्टी वेगवेगळीया। तिया करांघ्नीं आंगोळियां। भिन्नाभिमान *
 * सूदलिया। मुदिया तेथें ॥१०९॥ हें एकलौतें चराचर। आर्विचारित सुंदर। प्रसवोनि थोर। थोरावली *
 * ॥११०॥ पै ब्रह्मा प्रातःकाळु। विष्णु तो माध्यान्ह वेळु। सदाशिव सायंकाळु। बाळा यया ॥१११॥ *
 * महाप्रलयसेजे। खेळोनि आलें निदिजे। विषमज्ञानें उमजे। कल्पोदयीं ॥११२॥ अर्जुना यापरी। *
 * मिथ्यादृष्टीचां घरीं। युगानुवृत्तीचीं करी। चोज पाउलें ॥११३॥ संकल्पु एयाचा इष्टु। अहंकारु विनटु। *
 * ऐसिया होय तें शेवटु। ज्ञानें यया ॥११४॥ आतां असो हे बहु बोली। ऐसें विश्व माया व्याली। तेथ जांघु *
 * जाली। माझी सत्ता ॥११५॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः। तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

* याकारणें मी पिता। महद्ब्रह्म माता। अपत्य पंडुसुता। जगडंबरु ॥११६॥ आतां शरीरें बहुतें। *
 * देखोनि न भेद हो चितें। जें मनबुद्ध्यादि भूतें। एकेंचि येथें ॥११७॥ हां गा एकेचि देहीं। काय अनारिसे *
 * अवयव नाहीं। तेवीं विचित्र विश्व पाहीं। एकचि हें ॥११८॥ पै उंचानीचा डाहाळिया। विषमा वेगळालिया। *
 * येकाचि जेवीं जालिया। बीजाचिया ॥११९॥ आणि संबंधु तोही ऐसा। मृत्तिके घटु लेंकु जैसा। कां *
 * पटत्व कापुसा। नातू होय ॥१२०॥ नाना कल्लोळपरंपरा। संतती जैसी सागरा। आम्हां आणि *

* चराचरा। संबंधु तैसा ॥२१॥ म्हणोनि वन्हि आणि ज्वाळा दोन्ही वन्हीचि केवळा। तेवीं मी गा सकळा। *
 * संबंधु वावो ॥२२॥ जालेंनि जगें मी झांकें। तरी जगत्वं कोण फांके। किळेवरी माणिकें। लोपिजे काई *
 * ॥२३॥ अळंकारातें आलें। तरी सोनेंपण काडू गेलें। कीं कमळ फांकलें। कमळत्वा मुके ॥२४॥ सांग *
 * पां धनंजया। अवयवीं अवयविया। आच्छादिजे कीं तया। तेंचि रूप ॥२५॥ कीं विरुढलेया जोंधळा। *
 * कणिसाचा निर्वाळा। वेंचला कीं आगळा। दिसतसे ॥२६॥ म्हणोनि जग परौतें। सारुनि पाहिजे *
 * मातें। तैसा नव्हे उखितें। आघवें मीचि ॥२७॥ हा तूं साचोकारा। निश्चयाचा खरा। गांठी बांध वीरा। *
 * जीवाचिये ॥२८॥ आतां मियां मज दाविला। शरीरीं वेगळाला। गुणीं मीचि बांधला। ऐसा आवडें *
 * ॥२९॥ जैसैं स्वप्नीं आपण। उठवूनियां आत्ममरणा। भोगिजे गा जाण। कपिध्वजा ॥१३०॥ कां *
 * कवळातें डोळे। प्रकाशूनि पिवळें। देखती तेंही कळे। तयांसीचि ॥३१॥ नाना सूर्य प्रकाशें। प्रकटी *
 * तें अभ्र भासे। तो लोपला हेंही दिसे। सूर्यचि कीं ॥३२॥ पै आपणपेनि जालिया। छाया गा आपुलिया। *
 * बिहोनि बिहालिया। आन आहे ॥३३॥ तैसीं इयें नाना देहें। दाऊनि मी नाना होयें। तेथ ऐसा बंधु *
 * आहे। तेंही देखें ॥३४॥ बंधु कां न बंधिजे। हें जाणणें मज माझें। नेणणेनि उपजे। आपलेनि ॥३५॥ *
 * तरी कोणें गुणें कैसा। मजचि मी बंधु ऐसा। आवडे तें परियेसा। अर्जुनदेवा ॥३६॥ गुण किती किंधर्म। *
 * कायि ययां रूपनामा। कें जालें हें वर्म। अवधारिजे ॥३७॥ *

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः। निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

* तरी सत्त्वरजतमा। तिघांसिहि हें नाम। आणि प्रकृति जन्म। भूमिका ययां ॥३८॥ येथ सत्त्व तें *
 * उत्तम। रज तें मध्यम। तिहींमार्जीं तम। सावियाधारें ॥३९॥ हें एकेचि वृत्तीचां ठायीं। त्रिगुणत्व आवडे *
 * पाहीं। वयसात्रय देहीं। येकीं जेवीं ॥१४०॥ कां मीनलेनि कीडें। जंव जंव तूक वाढे। तंव तंव सोनें *
 * हीन पडे। पांचिकां कसीं ॥४१॥ पै सावधपण जैसैं। वाहविलें आळसैं। सुषुप्ति बैसे। घणावोनी *
 * ॥४२॥ तैसी अज्ञानांगीकारें। निगाली वृत्ति विखुरे। ते सत्त्वरजद्वारें। तमही होय ॥४३॥ अर्जुना गा *
 * जाण। ययां नाम गुण। आतां दाखऊं खुण। बांधिती ते ॥४४॥ तरी क्षेत्रज्ञदशे। आत्मा मोटका पैसे। *
 * हें देह मी ऐसैं। मुहूर्त करी ॥४५॥ आजन्ममरणांतीं। देहधर्मीं समस्तीं। ममत्वाची सूती। घे ना जंव *
 * ॥४६॥ जैसी मीनाचां तोंडीं। पडेना जंव उंडी। तंव गळ आसुडी। जळपारधी ॥४७॥ *

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्। सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥६॥

* तेवीं सत्त्वं लुब्धकें। सुखज्ञानाचीं पासिकें। वोढिजती मग खुडके। मृगु जैसा ॥४८॥ मग ज्ञानें *
 * चडफडी। जाणिवेचे खुरखोडी। स्वयंसुख हें धाडी। हातींचें गा ॥४९॥ तेव्हां विद्यामानें तोखे। लाभमात्रें *
 * हरिखें। मी संतुष्ट हेंही देखे। श्लाघों लागे ॥१५०॥ म्हणे भाग्य ना माझें। आजि सुखियें नाहीं दुजें। *
 * विकाराष्टकें फुंजे। सात्त्विकाचेनि ॥५१॥ आणि येणेंही न सरे। लांकण लागे दुसरें। जें विद्वत्तेचें भरे। *
 * भूत आंगीं ॥५२॥ आपणचि ज्ञानस्वरूप आहे। तें गेलें हें दुःख न वाहे। कीं विषयज्ञानें होये। *

गगनायेवढा ॥५३॥ रावो जैसा स्वप्नीं। रंकपणें रिगे धानीं। तो दों दाणा मानी। इंदु ना मी ॥५४॥
 तैसैं गा देहातीता। जालेया देहवंता। हों लागे पंडुसुता। बाह्यज्ञानें ॥५५॥ प्रवृत्तिशास्त्र बुझे।
 यज्ञविद्या उमजे। किंबहुना सुझे। स्वर्गवरी ॥५६॥ आणि म्हणे आजि आना। मीवांचूनि नाहीं सज्जान।
 चातुर्यचंद्रा गगना। चित्त माझें ॥५७॥ ऐसैं सत्त्व सुखज्ञानीं। जीवासि लावूनि कानी। बैलाची करी
 वानी। पांगुळाचीया ॥५८॥ आतां हाचि शरीरीं। रजें जियापरी। बांधिजे तें अवधारीं। सांगिजेल
 ॥५९॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्। तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥७॥

हें रज याचि कारणें। जीवातें रंजऊं जाणे। हें आर्भिलाखाचें तरुणें। सदाचि गा ॥१६०॥ हें
 जीवीं मोटकें रिगे। आणि कामाचां मदीं लागे। मग वारया वळघे। चिंतेचिया ॥६१॥ घृतें आंबुखूनि
 आगियाळें। वज्राग्नीचें सादुकलें। आतां बहु थेंकुलें। आहे तेथ ॥६२॥ तैसी खवळे चाडा। होय
 दुःखासकट गोडा। इंद्रश्रीहि सांकडा। गमों लागे ॥६३॥ तैसी तृष्णा वाढिनलिया। मेरुही हाता
 आलिया। तन्ही म्हणे एखादिया। दारुणाहि वळघो ॥६४॥ आजि असतें वेंचिजेल। परी पाहे काय
 कीजेल। ऐसा पांगीं वडीला। व्यवसाय मांडी ॥६५॥ जीविताची कुरोंडी। वोंवाळू लागे कवडी। मानी
 तृणाचिये जोडी। कृतकृत्यता ॥६६॥ म्हणे स्वर्गा हन जावें। तरी काय तेथें खावें। ययालागीं धांवे।

याग करूं ॥६७॥ व्रतापाठीं व्रतें। आचरे इष्टपूर्ते। काम्यावांचूनि हातें। शिवणें नाहीं ॥६८॥ पें
 ग्रीष्मांतींचा वारा। विसवो नेणे वीरा। तैसा न म्हणे व्यापारा। रातिदिवो ॥६९॥ काय चंचळु मासा।
 कामिनीकटाक्षु जैसा। लवलाहो तैसा। विजू नाहीं ॥१७०॥ तेतुलेनि गा वेगें। स्वर्गसंसारपांगें।
 आगीमार्जीं रिगे। क्रियांचिये ॥७१॥ ऐसा देहीं देहावेगळा। ले तृष्णेचिया सांखळा। खटाटोपु वाहे
 गळां। व्यापाराचा ॥७२॥ हें रजोगुणाचें दारुण। देहीं देहियासि बंधना। परिस आतां विंदाण। तमाचें
 तें ॥७३॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्। प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥

व्यवहाराचेहि डोळे। मंद जेणें पडळें। मोहरात्रीचें काळें। मेहुडें जें ॥७४॥ अज्ञानाचें जियालें।
 तया एका लागलें। जेणें विश्व भुललें। नाचत असे ॥७५॥ आर्विवेकमहामंत्र। जें मौढ्यमद्याचें पात्र। हें
 असो मोहनास्त्र। जीवांसि जें ॥७६॥ पार्था तें गा तमा। रचूनि ऐसैं वर्म। चौखुरी देहात्म। मानियातें
 ॥७७॥ हें एकचि कीर शरीरीं। माजों लागे चराचरीं। आणि तेथ दुसरी। गोठी नाहीं ॥७८॥ सर्वेंद्रियां
 जाड्या। मनामार्जीं मौढ्या। माल्हाती दाढ्या। आलस्याचें ॥७९॥ आंगें आंग मोडामोडी। कार्यजातीं
 अनावडी। नुसती परवडी। जांभयांची ॥१८०॥ उघडियाचि दिठी। देखणें नाहीं किरीटी। नाळवितांचि
 उठी। वो म्हणौनि ॥८१॥ पडलिये धोंडी। नेणे कानी मुरडी। तयाचि परी मुरकुंडी। उकलूं नेणे
 ॥८२॥ पृथ्वी पाताळीं जावो। कां आकाशही वरी येवो। परी उठणें हा भावो। उपजों नेणे ॥८३॥

* उचितानुचित आघवें। झांसुरतां नाठवे जीवें। जेथींचा तेथ लोळावें। ऐसी मेधा ॥८४॥ उभऊनि *
 * करतळें। पडिघाये कपोळें। पायाचें शिरियाळें। मांडूं लागे ॥८५॥ आणि निद्रेविषयीं चांगु। जीवीं *
 * आथि लागु। झोंपीं जातां स्वर्गु। वावो म्हणे ॥८६॥ ब्रह्मायु होइजे। मग निजेलियाचि आर्शिजे। हें *
 * वांचूनि दुजें। व्यसन नाहीं ॥८७॥ वाटा जातां वोघें। कल्हातांही डोळा लागे। अमृतही परी नेघे। जरी *
 * नीद आली ॥८८॥ तेवींचि आक्रोशबळें। व्यापारे कोणे एके वेळे। निगालें तरी आंधळें। रोषें जैसें *
 * ॥८९॥ केधवां कैसें राहाटावें। कोणेसीं काय बोलावें। हें ठाकतें कीं नागवे। हेंही नेणे॥९०॥ वणवा *
 * मियां आघवा। पांखेंचि पुसोनि घेयावा। पतंगु या हांवा। घाली जेवीं ॥९१॥ तैसा वळघे साहसा। *
 * अकरणींच धिंवसा। किंबहुना ऐसा। प्रमाद रुचे ॥९२॥ एवं निद्रालस्यप्रमादीं। तम इहीं त्रिविधीं। बांधे *
 * निरुपाधी। चोखटातें ॥९३॥ जैसा वन्ही काष्ठीं भरे। तें दिसे काष्ठाकारें। व्योम घटें आवरे। तें *
 * घटाकाश ॥९४॥ नाना सरोवर भरलें। तें चंद्रत्व तेथें बिंबलें। तैसें गुणाभासीं बांधले। आत्मत्व *
 * गमे॥९५॥

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारता। ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥९॥

* परि हरुनि कफवाता। जें देहीं आटोपे पित्त। तें करी संतप्ता। देह जेवीं ॥९६॥ कां वरिष आतप *
 * जैसें। जिणोनि शीतचि दिसे। तेव्हां होय हिंव ऐसें। आकाश हें ॥९७॥ नाना स्वप्न जागृती। लोपूनि *

* ये सुषुप्ति। तें क्षणु एक चित्तवृत्ती। तेचि होय ॥९८॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारता। रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥

* तैसीं रजतमें हारवी। जें सत्त्व माजु मिरवी। तें जीवाकरवीं म्हणवी। सुखिया ना मी ॥९९॥ *
 * तैसेंचि सत्त्व रज। लोपूनि तमाचें भोज। वळघे तें सहज। प्रमादी होय ॥१००॥ तयाचि गा परिपाठीं। *
 * सत्त्वतमातें पोटीं। घालूनि जेव्हां उठी। रजोगुण ॥१०१॥ तेव्हां कर्मावांचूनि कांहीं। आन सोंदरचि *
 * नाहीं। ऐसें मानी देहीं। देहराजु ॥१०२॥ त्रिगुणवृद्धिनिरूपण। तीं श्लोकीं सांगितलें जाण। आतां *
 * सत्त्वादिवृद्धिलक्षण। सादर परिसा ॥१०३॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते। ज्ञानं यदा तदा विद्याद्वृद्धं सत्त्वमित्युत ॥१०१॥

लोभःप्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा। रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१०२॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च। तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१०३॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्। तदोत्तमविदांलोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१०४॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते। तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१०५॥

* पें रजतमविजयें। सत्त्व गा देहीं इये। वाढतां चिन्हें तियें। ऐसीं होती ॥१०४॥ जे प्रज्ञा आंतुलीकडे। *
 * न समातीं बाहेरी वोसंडे। वसंतीं पद्मखंडें। दृती जैसी॥१०५॥ सर्वेंद्रियांचां आंगणीं। विवेक करी राबणी। *
 * साचचि करचरणीं। होती डोळे॥१०६॥ राजहंसापुढें। चांचूचें आगरडें। तोडी जेवीं झगडे। क्षीरनीराचे *

* ॥७॥ तेवीं दोषादोषविवेकीं। इंद्रियेंचि होती पारखीं। नियमु बा रे पायिकी। वोळगे तें ॥८॥ नाइकणें *
 * तें कानचि वाळी। न पहाणें तें दिठीचि गाळी। अवाच्य तें टाळी। जीभचि गा ॥९॥ वाती पुढां जैसैं। *
 * पळों लागे काळवसैं। निषिद्ध इंद्रियां तैसैं। समोर नोहे ॥२१०॥ धाराधरकाळे। महानदी उचंबळे। *
 * तैसी बुद्धि पघळे। शास्त्रजातीं ॥११॥ अगा पुनवेचां दिवशीं। चंद्रप्रभा धांवे आकाशीं। ज्ञानीं वृत्ति *
 * तैसी। फांके सेंघ ॥१२॥ वासना एकवटे। प्रवृत्ति वोहटे। मानस विटे। विषयांवरी ॥१३॥ एवं सत्त्व *
 * वाढे। तें तें चिन्ह फुडें। आणि निधनही घडे। तेव्हांचि जरी ॥१४॥ तरी जैसीचि घरींची संपत्ती। *
 * आणि तैसीच उदार्यधैर्यवृत्ती। मा परत्रा आणि कीर्ती। कां नोहावें ॥१५॥ कां पाहालेनि सुयाणें। *
 * जालया परगुणें। पढियंतें ये पाहुणें। स्वर्गोनियां ॥१६॥ मग गोमटेया तया। जावळी असे धनंजया। *
 * तेवीं सत्त्वीं जाणे देहा। कें आथि गा ॥१७॥ जे स्वगुणीं उद्धट। घेऊनि सत्त्व चोखट। निगे सांडूनि *
 * कोपट। भोगक्षम हें ॥१८॥ अवचटें ऐसा जो जाये। तो सत्त्वाचाचि नवा होये। किंबहुना जन्म लाहे। *
 * ज्ञानियांमाजीं ॥१९॥ सांग पां धनुर्धरा। रावो रायपणें डोंगरा। गेलिया अपुरा। होय काई ॥२२०॥ *
 * नातरी येथिंचा दिवा। नेलिया सेजिया गांवा। तो तेथें तरी पांडवा। दीपचि कीं ॥२१॥ तैसी ते *
 * सत्त्वशुद्धी। आगळी ज्ञानेंसी वृद्धी। तरंगावों लागे बुद्धी। विवेकावरी ॥२२॥ पै महदादि परिपाटी। *
 * विचारुनि शेवटीं। विचारासकट पोटीं। जिराणि जाय ॥२३॥ छत्तिसां सदतिसावें। चोविसां पंचविसावें। *

* तिन्ही नुरोनि स्वभावे। चतुर्थ जें ॥२४॥ ऐसैं सर्व जें सर्वोत्तम। जालें असे जया सुगम। तयासवें *
 * निरुपम। लाहे देह ॥२५॥ इयाचि परी देख। तमसत्त्व अधोमुख। बैसोनि जें आगळीक। धरी रज *
 * ॥२६॥ आपलिया कार्याचा। धुमाड गांवीं देहाचा। माजवी तें चिन्हांचा। उदयो ऐसा ॥२७॥ पांजरली *
 * वाहटुळी। करी वेगळ वेंटाळी। तैसी विषयीं सरळी। इंद्रियां होय ॥२८॥ परदारादिक पडे। परी विरुद्ध *
 * ऐसैं नावडे। मग शेळियेचेनि तोंडें। सेंघ चारी ॥२९॥ हा ठायवरी लोभु। करी स्वैरत्वाचा राबु। *
 * वेंटाळितां अलाभु। तें तें उरे ॥२३०॥ आणि आड पडलिया। उद्यमजातां भलतेया। प्रवृत्ति धनंजया। *
 * हातु न काढी ॥३१॥ तेवींचि एखादा प्रासादु। कां करावा अश्वमेधु। ऐसा अचाट छंदु। घेऊनि उठी *
 * ॥३२॥ नगरेंचि रचावीं। जळाशयें निर्मावीं। महावनें लावावीं। नानाविधें ॥३३॥ ऐसैसां अफाटीं *
 * कर्मीं। समारंभु उपक्रमी। आणि दृष्टादृष्ट कामीं। पुरे न म्हणे ॥३४॥ सागरुही सांडी पडे। आगी न *
 * लाहे तीन कवडे। ऐसैं आर्भिलाषीं जोडे। दुर्भरत्व ॥३५॥ स्पृहा मना पुढां पुढां। आशेचा घे दवडा। *
 * विश्व घापे चाडा। पायांतळीं ॥३६॥ इत्यादि वाढतां रजीं। इयें चिन्हें होती साजीं। आणि ऐशा *
 * समाजीं। वेंचे जरी देह ॥३७॥ तरी आघवाचि इहीं। परिवारला आनीं देहीं। रिगे परी योनिही। *
 * मानुषीचि ॥३८॥ सुरवाडेंसिं भिकारी। वसो पां राजमंदिरीं। तरी काय अवधारीं। रावो होईल *
 * ॥३९॥ बैल तेथें करबाडें। हें न चुके गा फुडें। नेइजो कां वन्हाडें। समर्थाचेनी ॥२४०॥ म्हणौनि *
 * व्यापाराहातीं। उसंतु देहा ना राती। तैसयांचिये पांती। जुंपिजे तो ॥४१॥ कर्मजडाचां ठायीं। *

* किंबहुना होय देहीं। जो रजोवृद्धीचां डोहीं। बुडोनि निमे ॥४२॥ मग तैसाचि पुढती। रजसत्त्ववृत्ती। *
 * गिळूनि ये उन्नती। तमोगुण ॥४३॥ तेंचि जियें लिंगें। देहींचीं सबाह्य सांगें। तियें परिस चांगें। श्रोत्रबळें *
 * ॥४४॥ तरी होय ऐसें मन । जैसें रविचंद्रहीन । रात्रीचें का गगन। अवसेचिये ॥४५॥ तैसें अंतर *
 * असोसा। होय स्फूर्तिहीन उद्वस। विचाराची भाषा हारपे तें ॥४६॥ बुद्धि मेचवेना धोंडीं। हा ठायवरी *
 * मवाळें सांडी। आठवो देशधडी। जाला दिसे ॥४७॥ आर्विवेकाचेनि माजें। सबाह्य शरीर गाजे। *
 * एकलेनि घेपे दीजे। मौढ्यें तेथ ॥४८॥ आचारभंगाचीं हाडें। रूपती इंद्रियापुढें। मरे जरी तेणेंकडे। *
 * क्रिया जाय ॥४९॥ पाहीं आणिकही एक दिसे। जे दुष्कृतीं चित्त उल्हासे। आंधारीं देखणें जैसें। *
 * डुडुळाचें ॥२५०॥ तैसें निषिद्धाचेनि नांवें। भलतेही भरे हांवें। तियेविषयीं धांवें। घेती करणें ॥५१॥ *
 * मदिरा न घेतां डुले। सन्निपातेंवीण बरळे। निष्प्रेमेंचि भुले। पिसें जैसें ॥५२॥ चित्त तरी गेलें आहे। परी *
 * उन्मनी ते नोहे। ऐसें माल्हातिजे मोहें। माजिरेनि ॥५३॥ किंबहुना ऐसेंसीं। इयें चिन्हें तम पोषी। जें *
 * वाढे आयितीसी। आपुलिया ॥५४॥ आणि हेंचि होय प्रसंगें। मरणाचें जरी खागें। तरी तेतुलेनि रिगे। *
 * तमेंसीं तो ॥५५॥ राई राईपण बीजीं। सांठवूनियां अंग त्यजी। मग विरुढे तें दुजी। गोठी आहे गा *
 * ॥५६॥ पै होऊनि दीपकलिका। येरु आगी विझो कां। कां जेथ लागे तेथ असका। तोचि आहे *
 * ॥५७॥ म्हणोनि तमाचिये लोथे। बांधोनियां संकल्पातें। देह जाय तें मागौतें। तमाचेंचि होय ॥५८॥ *

* आतां काय येणें बव्हें। जो तमोवृद्धि मृत्यु लाहे। तो पशु कां पक्षी होये। झाड कां कृमी ॥५९॥ *
 * कर्मणः सकृत्तस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्। रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥ *
 * येणेंचि पै कारणें। जें निपजे सत्त्वगुणें। तें सुकृत ऐसें म्हणे। श्रौतसमो ॥२६०॥ म्हणौनि तया *
 * निर्मळा। सुखज्ञानी सरळा। अपूर्व ये फळा। सात्त्विक तें ॥६१॥ मग राजसा जिया क्रिया। तया *
 * इंद्रावणी पिकलिया। जे सुखें चितारूनियां। फळती दुःखें ॥६२॥ कां निंबोळियेचें पिका वरि गोड *
 * आंत विखा। तैसें तें राजस देखा। क्रियाफळ ॥६३॥ तामस कर्म जितुकें। अज्ञानफळेंचि पिके। *
 * विषांकुर विखें। जियापरी ॥६४॥ म्हणौनि बारे अर्जुना। येथ सत्त्वचि हेतु ज्ञाना। जैसा कां दिनमाना। *
 * सूर्य हा पै ॥६५॥ आणि तैसेंचि हें जाण। लोभासि रज कारण। आपलें विस्मरण। अद्वैता जेवीं ॥६६॥ *
 * मोह-अज्ञान-प्रमादा। ययां मैळेंया दोषवृंदा। पुढती पुढती प्रबुद्धा। तमचि मूळ ॥६७॥ ऐसें विचाराचां *
 * डोळां। तिन्हीं गुण हे वेगळवेगळां। दाविले जैसा आंवळा। तळहातींचा ॥६८॥ *

* सत्त्वात् संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥ *
 * तंव रजतमें दोन्हीं। देखिलीं प्रौढ पतनीं। सत्त्वावाचूनि नाणी। ज्ञानाकडे ॥६९॥ म्हणौनि *
 * सात्त्विका वृत्ती। एक जाले गा जन्मव्रती। सर्वत्यागें चतुर्थी। भक्ति जैसी ॥ २७०॥ *

* ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥ *
 * तैसें सत्त्वाचेनि नटनाचें। असणें जाणें जयांचें। ते तनुत्यागीं स्वर्गींचे। राय होती ॥७१॥ इयाचि *

परी रजें। जिहीं कां जीजे मरिजे। तिहीं मनुष्य होइजे। मृत्युलोकीं ॥७२॥ तेथ सुखदुःखाचें खिचटें। जेविजे एकेचि ताटें। जेथ इये मरणवाटे। पडिलें नुठी ॥७३॥ आणि तयाचि स्थिति तमीं। जे वाढोनि निमती भोगक्षमीं। ते घेती नरकभूमी। मूळपत्र ॥७४॥ एवं वस्तूचिया सत्ता। त्रिगुणासी पंडुसुता। दाविली सकारणता। आघवीचि ॥७५॥ पै वस्तु वस्तुत्वं आर्सिकें। तें आपणपें गुणासारिखें। देखोनि कार्यविशेखें। अनुकरे गा ॥७६॥ जैसें कां स्वप्नींचेनि राजें। जें परचक्र देखिजे। तें हारी जैत होईजे। आपणचि ॥७७॥ तैसे मध्योर्ध्वअधा हे जे गुणवृत्तिभेदा। दृष्टीवांचूनि शुद्ध। वस्तुचि असे ॥७८॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति। गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मदभावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

परी हे वाहणी असो। तरी आन न दिसो। परिसें तें सांगतसों। मागील गोठी ॥७९॥ तरी ऐसें निजनिजें। सामर्थ्ये तिन्ही सहजें। होती देहव्याजें। गुणचि हे ॥८०॥ इंधनाचेनि आकारें। आग्नि जैसा अवतरे। कां अवगे तरुवरें। भूमिरसु ॥८१॥ नाना दहिंयाचेनि मिसें। परिणमे दूधचि जैसें। कां मूर्त होय ऊंसें। गोडी जेवीं ॥८२॥ तैसे हे सांतःकरण। देहचि होती त्रिगुण। म्हणोनि बंधा कारणा। घडे कीर ॥८३॥ परी चोज हें धनुर्धरा। जे एवढा गुंफिरा। मोक्षाचा संसारा। उणा नोहे ॥८४॥ गुण आपुलालेनि धर्में। देहींचे माघुत साउमें। चाळितांही न खोमे। गुणातीतता ॥८५॥ ऐसी मुक्ति असे सहजा। ते आतां परिसऊं तुजा। जे तूं ज्ञानांबुज-। द्विरेफु कीं ॥८६॥ आणि गुणीं गुणाजोगें। चैतन्य

नोहे मागे। बोलिलों तें खागें। तेवींचि हें ॥८७॥ तरी पार्था जें ऐसें। बोधलेनि जीवें दिसो। स्वप्न कां जैसें। चेडलेनी ॥८८॥ नातरी आपण जळीं। बिंबलों तीरोनी न्याहाळी। चळण होतां कल्लोळीं। अनेकधा ॥८९॥ कां नटलेनि लाघवें। नटु जैसा न झकवे। तैसें गुणजात देखावें। न होनियां ॥९०॥ पै ऋतुत्रय आकाशें। धरुनियांही जैसें। नेदिजेचि येवों वोसें। वेगळेपणा ॥९१॥ तैसें गुणीं गुणापरौतें। जें आपणपें असे आयितें। तिये अहं बैसे अहंते। मूळकेचिये ॥९२॥ तें तेथूनि मग पाहातां। म्हणे साक्षी मी अकर्ता। हे गुणचि क्रियाजातां। नियोजना ॥९३॥ सत्त्वरजतमांचां। भेदीं पसरु कर्मांचां। होत असे तो गुणांचा। विकारु हा ॥९४॥ ययामार्जी मी ऐसा। वर्नीं कां वसंतु जैसा। वनलक्ष्मीविलासा। हेतुभूत ॥९५॥ कां तारागणीं लोपावें। सूर्यकांतीं उद्दीपावें। कमळीं विकासावें। जावें तमें ॥९६॥ ये कोणाचीं काजीं कहीं। सविता जैसा नाहीं। तैसा अकर्ता मी देहीं। सत्तारूप ॥९७॥ मी दाऊनि गुण देखे। गुणता हे मियां पोखे। ययाचेनि निःशेखें। उरे तें मी ॥९८॥ ऐसेनि विवेकें जया। उदो होय धनंजया। ये गुणातीतत्व तया। अर्धपंथें ॥९९॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्। जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

आतां निर्गुण असे आणिका। तें तो जाणे अचुका। जे ज्ञानें केलें टीका। तयाचिवरी ॥३००॥ किंबहुना पंडुसुता। ऐसा तो माझी सत्ता। पावे जैसी सरिता। सिंधुत्व गा ॥१॥ नळिकेवरुनि उठिला। जैसा शुक शाखे बैसला। तैसा मूळअहंते वेढिला। तो म्हणौनियां ॥२॥ अगा अज्ञानाचिया निदा। जो

* घोरत होता बदबदा। तो स्वस्वरूपीं प्रबुद्धा। चेइला कीं ॥३॥ पैं बुद्धिभेदाचा आरिसा। तया हातोन
 * पडिला वीरेशा। म्हणौनि प्रतिमुखाभासा। मुकला तो ॥४॥ देहाभिमानाचा वारा। आतां वाजों ठेला
 * वीरा। तें ऐक्य वीचिसागरां। जीवेशां हें ॥५॥ म्हणौनि मद्भावेसी। प्राप्ति पाविजे तेणेंसरिसी। वर्षातीं
 * आकाशीं। घनजात जेवीं ॥६॥ तेवीं मी होऊनि निरुता। मग देहींचि ये असतां। नांगवे देहसंभूतां।
 * गुणांसि तो ॥७॥ जैसा भिंगाचेंनि घरें। दीपप्रकाशु नावरे। कां न विझेचि सागरें। वडवानळु ॥८॥
 * तैसा आला गेला गुणांचा। बोधु न मैळे तयाचा। तो देहीं जैसा व्योमींचा। चंद्र जळीं ॥९॥ तिन्ही गुण
 * आपुलालिये प्रौढी। देहीं नाचविती बागडीं। तो पाहोंही न धाडी। अहंतेतें ॥३१०॥ हा ठायवरी।
 * नेहटोनि ठेला अंतरीं। आतां काय वर्ते शरीरीं। कांहीं नेणे ॥११॥ सांडूनि आंगींची खोळी। सर्प
 * रिगालिया पाताळीं। ते त्वचा कोण सांभाळी। तैसें जालें ॥१२॥ कां सौरभ्यजीर्णु जैसा। आमोदु
 * मिळोनि जाय आकाशा। माघारा कमळकोशा। नयेचि तो ॥१३॥ पैं स्वरूपसमरसें। तयाही गा जालें
 * तैसें। तेथ किंधर्म हें कैसें। नेणे देह ॥१४॥ म्हणौनि जन्मजरामरणा। इत्यादि जे साही गुणा। ते देहींचि
 * ठेले कारणा। नाहीं तया ॥१५॥ घटाचिया खापरिया। घटभंगीं फेडिलिया। महदाकाश आपैसया।
 * जालेंचि असे ॥१६॥ तैसी देहबुद्धि जाये। जें आपणपां आठौ होये। तें आन कांहीं आहे। तेंवांचुनी
 * ॥१७॥ येणें थोर बोधलेपणें। तयासि गा देहीं असणें। म्हणूनि तो मी म्हणें। गुणातीत ॥१८॥ यया

* देवाचिया बोला। पार्थु आर्ति सुखावला। मेघें संबोखिला। मोरु जैसा ॥१९॥

* **अर्जुन उवाच :** कैलिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो। किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते ॥२१॥

* तेणें तोषें वीर पुसे। जी कोणहीं चिन्हीं तो दिसे। जयामार्जी वसे। ऐसा बोधु ॥३२०॥ तो निर्गुण

* काय आचरे। कैसेनि गुण निस्तरे। हें सांगिजो माहरें। कृपेचेनि ॥२१॥ यया अर्जुनाचिया प्रश्ना। तो

* षड्गुणांचा राणा। परिहारु आकर्णा। बोलतु असे ॥२२॥

* **श्रीभगवानुवाच :** प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव। न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥२२॥

* म्हणे पार्था तुझी नवाई। हें येतुलेंचि पुससी काई। तें नामचि तया पाहीं। साचें लटिकें ॥२३॥

* गुणातीत जया नांवें। तो गुणाधीन तरी नव्हे। ना होय तरी नांगवे। गुणांयया ॥२४॥ परी अधीन कां

* नागवें। हेंचि कैसेनि जाणावें। गुणांचिये उखरवे। मार्जी असतां ॥२५॥ हा संदेह जरी वाहसी। तरी

* सुखें पुसों लाहसी। परिस आतां तयासीं। रूप करुं ॥२६॥ तरी रजाचेनि माजें। देहीं कर्माचें

* आणोजें। प्रवृत्ति जें घेइजे। वेंटाळूनि ॥२७॥ तें मीचि कां कर्मठा। ऐसा न ये श्रीमाठा। कां दरिद्रलिये

* बुद्धी वीटा। तोही नाहीं ॥२८॥ अथवा सत्त्वेचि आर्धिकें। जें सर्वेद्रियीं ज्ञान फांके। तें सुविद्यता तोखे।

* उभजेही ना ॥२९॥ कां वाढिनलेनि तमें। न गिळेजेचि मोहभ्रमें। तें अज्ञानत्वं न श्रमे। घेणेंही नाहीं

* ॥३३०॥ पैं मोहाचां अवसरीं। ज्ञानाची चाड न धरी। ज्ञानें कर्म नादरी। होतां न दुःखी ॥३१॥

* सायंप्रातर्मध्यान्हा। या तिही काळांची गणना। नाहीं जेवीं तपना। तैसा असे ॥३२॥ तया वेगळाचि

काय प्रकाशें। ज्ञानित्व यावें असे। कायि जळार्णव पाउसें। साजा होय ॥३३॥ ना प्रवर्तलेनि कर्में।
कर्मठत्व तया का गमे। सांगें हिमवंतु हिमें। कांपे कायि ॥३४॥ नातरी मोह आलिया। काइ पां ज्ञाना
मुकिजेल तया। महाआगीतें उन्हाळ्या। जाळवत असे ॥३५॥

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते। गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥

तैसें गुणागुणकार्य हें। आघवेंचि आपण आहें। म्हणौनि एकेका नोहे। तडातोडी ॥३६॥ येवढेया
गा प्रतीती। तो देहा आलासे वस्ती। वाटे जातां गुंती। मार्जी जैसा ॥३७॥ तो जिणता ना हारवी।
तैसा गुण नव्हे ना करवी। जैसी कां श्रोणवी। संग्रामींची ॥३८॥ कां शरीराआंतील प्राणु। घरीं
आतिथ्याचा ब्राह्मणु। नाना चोहटाचा स्थाणु। उदासु जैसा ॥३९॥ आणि गुणाचा यावाजावा। ढळे
चळे ना पांडवा। मृगजळाचा हेलावा। मेरु जैसा ॥४०॥ हें बहुत कायि बोलिजे। व्योम वारेनि न
वचिजे। कां सूर्य ना गिलिजे। अंधकारें ॥४१॥ स्वप्न कां गा जियापरी। जागतयातें न संतरी। गुणीं
तैसा अवधारीं। न बंधिजे तो ॥४२॥ गुणां कीर नातुडे। परी दुरुनि जें पाहे कोडें। तें गुणदोष
सायिखडें। सभ्यु जैसा ॥४३॥ सत्कर्में सात्त्विकीं। रज तें रजोविषयकीं। तम मोहादिकीं। वर्तत असे
॥४४॥ परिस तयाचिया गा सत्ता। होती गुणक्रिया समस्ता। हें जुडें जाणे सविता। लौकिका जेवीं
॥४५॥ समुद्रचि भरती। सोमकांतचि पाझरती। कुमुदें विकासती। चंद्रु तो उगा ॥४६॥ कां वाराचि

वाजे विझे। गगनें निश्चळ आर्सिजे। तैसा गुणाचिये गजबजे। डोलेना जो ॥४७॥ अर्जुना येणें लक्षणें।
तो गुणातीतु जाणणें। परिस आतां आचरणें। तयाचियें ॥४८॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाश्चनः। तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥२४॥

तरी वस्त्रासि पाठीं पोटीं। नाहीं सुतावांचूनि किरीटी। ऐसें सुये दिठी। चराचर मद्रूपें ॥४९॥
म्हणोनि सुखदुःखासरिसें। कांटाळें आचरे ऐसें। रिपुभक्तां जैसें। हरीचें देणें ॥५०॥ एन्हवीं तरी
सहजें। सुखदुःख तेंचि सेविजे। देहजळीं होइजे। मासोळीं जें ॥५१॥ आतां तें तंव तेणें सांडिलें।
आहे स्वस्वरूपेंसीचि मांडिले। सस्यांतीं निवडिलें। बीज जैसें ॥५२॥ कां वोघ सांडूनि गांगा। रिघोनि
समुद्राचें आंगा। निस्तरली लगबगा। खळाळाची ॥५३॥ तेवीं आपणपांचि जया। वस्ती जाली गा
धनंजया। तया देहीं आपसया। सुख तैसें दुःख ॥५४॥ रात्रि तैसें पाहलें। हें धारणा जेवीं एक जालें।
आत्मारामु देहआतलें। द्वंद्व तैसें ॥५५॥ पै निद्रिताचेनि आंगेंशीं। सापु तैशी उर्वशी। तेवीं स्वरूपस्था
सरिसीं। देहीं द्वंद्वें ॥५६॥ म्हणौनि तयाचां ठायीं। शेणा सोनया विशेष नाहीं। रत्ना गुंडेया कांहीं।
नेणिजे भेदु ॥५७॥ घरा येवो पां स्वर्गु। कां वरिपडो वाघा। परी आत्मबुद्धीसि भंगा। कदा नव्हे ॥५८॥
निवटलें न उपवढे। जळीनलें न विरुढे। साम्यबुद्धी न मोडे। तयापरी ॥५९॥ हा ब्रह्मा ऐसेनि
स्तविजो। कां नीच म्हणोनि निंदिजो। परी नेणे जळों विझों। राखोंडी जैसी ॥६०॥ तैसी निंदा
आणि स्तुती। नये कोणहेचि व्यक्ती। नाहीं अंधारें कां वाती। सूर्या घरीं ॥६१॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः । सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

ईश्वरबुद्धी पूजिला। कां चोरु म्हणोनि गांजिला। वृषगर्जी वेढिला। केला रावो ॥६२॥ कां सुहृद
पासीं आलें। अथवा वैरी वरपडे जाले। परी नेणे राती पाहालें। तेज जेवीं ॥६३॥ साही ऋतु येतां
आकाशें। लिपिजेचि ना जैसें। तेवीं वैषम्य मानसें। जाणिजेना ॥६४॥ आणीकही एकु पाहीं। आचारु
तयाचां ठायीं। तरी व्यापारासि नाहीं। जालें दिसे ॥६५॥ सर्वारंभा उटकलें। प्रवृत्तीचें तेथ मावळे।
जळती गा कर्मफळें। ते तो आगी ॥६६॥ दृष्टादृष्टाचेनि नावें। भावोचि जीवीं नुगवे। सेवी जें स्वभावे।
पैठें होये ॥६७॥ सुखे ना शिणे। पाषाणु कां जेणें मानें। तैसी सांडीमांडी मनें। वर्जिली असे ॥६८॥
आतां किती हाचि विस्तारु। जाणें ऐसा आचारु। जया तोचि साचारु। गुणातीतु ॥६९॥ गुणांतें
आर्तिक्रमणें। घडे उपायें जेणें। तो आतां आणिकु आईक म्हणे। श्रीकृष्णनाथु ॥३७०॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

तरी व्यभिचाररहितें चित्तें। भक्तियोगें मातें। सेवी तो गुणातें। जाकळूं शके ॥७१॥ तरी कोणु
मी कैसी भक्ती। अव्यभिचारा काय व्यक्ती। हे आघवीचि निरुती। होआवी लागे ॥७२॥ तरी पार्था
परियेसा। मी तंव येथ ऐसा। रत्नीं किळावो जैसा। रत्नचि तो ॥७३॥ कां द्रवपणचि नीरा। अवकाशुचि
अंबर। गोडी तेचि साखरा। आन नाहीं ॥७४॥ वन्ही तेचि ज्वाळा। दळाचि नांव कमळा। रुख तेंचि

डाळा। फळादिक ॥७५॥ अगा हिंव जें आकर्षलें। तेंचि हिमवंत जेवीं जालें। नाना दूध मुरालें। तेंचि
दहीं ॥७६॥ तैसें विश्व येणें नावें। हें मीचि पै आघवें। घेई चंद्रबिंब सोलावें। न लगे जेवीं ॥७७॥ घृताचें
थिजलेंपण। न मोडितां घृतचि जाण। कां नाटितां कांकण। सोनेंचि तें ॥७८॥ नुकलितां पटु। तंतुचि
असे स्पष्टु। न विरवितां घटु। मृत्तिका जेवीं ॥७९॥ म्हणोनि विश्वपण जावें। मग मातें घेयावें। तैसा
नव्हे आघवें। सकटचि मी ॥३८०॥ ऐसेनि मातें जाणिजे। ते अव्यभिचार भक्ति म्हणिजे। येथ भेदु
काहीं देखिजे। तरी व्यभिचारु तो ॥८१॥ याकारणें भेदातें। सांडूनि अभेदें चित्तें। आपणयासकट
मातें। जाणावें गा ॥८२॥ पार्था सोनयाची टिका। सोनयासी लागली देख। तैसें आपणपें आणिका।
मानावें ना ॥८३॥ तेजाचा तेजौनि निघाला। परी तेजींचि असे लागला। तया रश्मी ऐसा भला। बोधु
होआवा ॥८४॥ पै परमाणु भूतळीं। हिमकणु हिमाचळीं। मजमार्जी न्याहाळीं। अहं तैसें ॥८५॥ हो
कां तरंगु लहानु। परी सिंधूसी नाहीं भिन्नु। तैसा ईश्वरीं मी आनु। नोहेचि मा ॥८६॥ एसोनि बा
समरसें। दृष्टि जें उल्हासे। ते भक्ति पै ऐसें। आम्ही म्हणों ॥८७॥ आणि ज्ञानाचें चांगावें। इयेचि दृष्टि
नावें। योगाचेंही आघवें। सर्वस्व हें ॥८८॥ सिंधू आणि जळधरा। मार्जी लागली अखंड धारा। तैसी
वृत्ति वीरा। प्रवर्ते ते ॥८९॥ कां कुहेसीं आकाशा। तोंडीं सांदा नाहीं जैसा। तो परमरसु तैसा। एकवटे
गा ॥३९०॥ प्रतिबिंबौनि बिंबवरी। प्रभेची जैसी उजरी। ते सोहंवृत्ती अवधारीं। तैसी होय ॥९१॥
ऐसेनि मग परस्परें। ते सोहंवृत्ति जें अवतरे। तें तियेंहिसकट सरे। आपैसया ॥९२॥ जैसा सेंधवाचा

रवा। सिंधूमार्जीं पांडवा। विरालेया विरवावा। हेंही ठाके ॥९३॥ नातरी जाळूनि तृणा। वन्हिही विझे
 आपणा। तैसें भेदु नाशूनि जाणा। ज्ञान नुरे ॥९४॥ माझें पैलपण जाये। भक्त हें ऐलपण ठाये। अनादि
 ऐक्य जें आहे। तेंचि निवडे ॥९५॥ आतां गुणातें तो किरीटी। जिणे या नव्हती गोष्टी। जे एकपणाही
 मिठी। पडों सरली ॥९६॥ किंबहुना ऐसी दशा। तें ब्रह्मत्व गा सुदंशा। हें तो पावे जो ऐसा। मातें भजे
 ॥९७॥ पुढती इहीं लिंगीं। भक्तु जो माझा जर्गीं। हे ब्रह्मता तयालागीं। पतिव्रता ॥९८॥ जैसें
 गंगेचेनि वोघें। डळमळीत जळ जें निघे। सिंधुपद तयाजोगें। आन नाहीं ॥९९॥ तैसा ज्ञानाचिया
 दिठी। जो मातें सेवी किरीटी। तो होय ब्रह्मतेचां मुकुटीं। चूडारत्न ॥१००॥ यया ब्रह्मत्वासीचि
 पार्था। सायुज्य ऐसी व्यवस्था। याचि नांवें चौथा। पुरुषार्थु गा ॥१०१॥ परी माझें आराधना। ब्रह्मत्वीं होय
 सोपान। येथ मी हन साधना। गमेन हो ॥१०२॥ तरी झणें झणें ऐसें। तुझां चित्तीं पैसें। पै ब्रह्म आन नसे।
 मीवांचूनि ॥१०३॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च। शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥१०४॥

अगा ब्रह्म या नांवा। आर्भिप्रावो मी पांडवां। मीचि बोलिजे आघवां। शब्दीं इहीं ॥१०४॥ पै मंडळ
 आणि चंद्रमा। दोनी नव्हती सुवर्मा। तैसा मज आणि ब्रह्मा। भेदु नाहीं ॥१०५॥ अगा नित्य जें निष्कंपा।
 अनावृत धर्मरूपा। सुख जें उमपा। आर्द्धितीय ॥१०६॥ विवेकु आपलें काम। सारुनि ठाकी जें धाम।

निष्कर्षाचें निःसीमा। किंबहुना मी ॥१०७॥ ऐसेसें हो अवधारा। तो अनन्याचा सोयरा। सांगतसे वीरा।
 पार्थासी ॥१०८॥ येथ धृतराष्ट्र म्हणे। संजया हें तूतें कोणें। पुसलेनिविण वायाणें। कां बोलसी ॥१०९॥
 माझी अवसरी ते फेडीं। विजयाची सांगें गुढी। येरु जीवीं म्हणे सांडीं। गोठी यिया ॥११०॥ संजयो
 विस्मयें मानसीं। आहा करुनी रसरसीं। म्हणे कैसें पां देवेसी। द्वंद्व यया ॥१११॥ तरी कृपाळु तो तुष्टो।
 यया विवेकु हा घोंटो। मोहाचा फिटो। महारोगु ॥११२॥ संजयो ऐसें चिंतितां। संवादु तो सांभाळितां।
 हरिखाचा येतु चित्ता। महापूर ॥११३॥ म्हणोनि आतां येणें। उत्साहाचेनि अवतरणें। श्रीकृष्णाचें
 बोलणें। सांगिजेल ॥११४॥ तया अक्षराआंतील भावो। पाववीन मी तुमचा ठावो। आइका म्हणे
 ज्ञानदेवो। निवृत्तीचा ॥११५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणातीतयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः

॥(श्लोक २७; ओव्या ४१५)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय पंधरावा

आता हृदय हें आपुलें। चौफळूनियां भलें। वरी बैसऊं पाउलें। श्रीगुरुचीं ॥१॥ ऐक्यभावाची अंजुळी। सर्वेद्रियकुड्मुळीं। भरुनियां पुष्पांजुळी। अर्घ्यु देवों ॥२॥ अनन्योदकें धुवटा वासना जे तन्निष्ठ। तें लागलेसे अबोटा चंदनाचें ॥३॥ प्रेमाचेनि भांगारें। निर्वाळूनि नूपुरें। लेवऊं सुकुमारें। पदें तियें ॥४॥ घणावली आवडी। अव्यभिचारें चोखडी। तिये घालूं जोडी। आंगोळिया ॥५॥ आनंदामोदबहळ। सात्त्विकाचें मुकुळ। तें उमललें अष्टदळ। ठेऊं वरी ॥६॥ तेथें अहं हा धूप जाळूं। नाहंतेजें वोवाळूं। सामरस्यें पोटाळूं। निरंतर ॥७॥ माझी तनु आणि प्राण। इयो दोनी पाउवा लेऊं

श्रीचरण। करुं भोगमोक्षनिंबलोण। पायां तयां ॥८॥ इया गुरुचरणसेवा। हों पात्र तया दैवा। जें सकळार्थमेळावा। पाटू बांधे ॥९॥ ब्रह्मीचें विसवणेंवरी। उन्मेख लाहे उजरी। जें वाचेतें इये करी। सुधासिंधु ॥१०॥ पूर्णचंद्राचिया कोडी। वक्तृत्वा घापे कुरोंडी। तैसी आणी गोडी। अक्षरांतें ॥११॥ सूर्ये आर्धिष्ठिली प्राची। जगा राणीव दे प्रकाशाची। तैशी वाचा श्रोतयां ज्ञानाची। दिवाळी करी ॥१२॥ नादब्रह्म खुजें। कैवल्यही तैसें न सजे। ऐसा बोलु देखिजे। जेणें दैवें ॥१३॥ श्रवणसुखाचां मांडवीं। विश्व भोगी माधवी। तैसी सासिने बरवी। वाचावल्ली ॥१४॥ ठावो न पवता जयाचा। मनेंसी मुरडली वाचा। तो देवो होय शब्दाचा। चमत्कारु ॥१५॥ जें ज्ञानासि न चोजवे। ध्यानासिही जें नांगवे। तें अगोचर फावे। गोठीमार्जी ॥१६॥ येवढें एक सौभग। वळघे वाचेचें आंग। गुरुपदपद्मपराग। लाहे जें कां ॥१७॥ तरी बहु बोलूं काई। आजि तें आनीं ठाई। मातेंवाचूनि नाहीं। ज्ञानदेवो म्हणे ॥१८॥ जे तान्हेनि मियां अपत्यें। आणि माझे गुरु एकलौते। म्हणोनि कृपेसि एकहातें। जालें तिये ॥१९॥ पाहा पां भरोवरी आघवी। मेघ चातकांसी रिचवी। मजलागीं गोसावीं। तैसें केलें ॥२०॥ म्हणोनि रिकामें तोंडा। करुं गेलें बडबडा। कीं गीता ऐसें गोडा। आतुडलें ॥२१॥ होय अदृष्ट आपैतें। तें वाळूचि रत्नं परते। उजू आयुष्य तें मारितें। लोभु करी ॥२२॥ आधर्णीं घातलिया हरळा। होती अमृताचे तांदुळा। जरी भुकेची राखे वेळा। जगन्नाथु ॥२३॥ तयापरी श्रीगुरु। करिती जें अंगीकारु। तें होऊनि ठाके संसारु। मोक्षमय आघवा ॥२४॥ पाहा पां काई नारायणें। तया पांडवांचें उणें।

* कीजेचि ना पुराणें। विश्ववंदें ॥२५॥ तैसें श्रीनिवृत्तिराजें। अज्ञानपण हें माझें। आणिलें वोजे। ज्ञानाचिया *
 * ॥२६॥ परि हें असो आतां। प्रेम रुळतसे बोलतां। कें गुरुगौरव वर्णितां। उन्मेष असे ॥२७॥ आतां *
 * तेणेंचि पसायें। तुम्हां संतांचें मी पाये। वोळगेन आर्भिप्रायें। गीतेचेनि ॥२८॥ तरी तोचि प्रस्तुतीं। *
 * चौदाविया अध्यायाचां अंतीं। निर्णयो कैवल्यपती। ऐसा केला ॥२९॥ जें ज्ञान जयाचां हातीं। तोचि *
 * समर्थु मुक्ती। जैसा शतमख संपती। स्वर्गींचिये ॥३०॥ कां शत एक जन्मां। जो जन्मोनि ब्रह्मकर्मा। *
 * करी तोचि ब्रह्मा। आनु नोहे ॥३१॥ नाना सूर्याचा प्रकाशु। लाहे जेवीं डोळसु। तेवीं ज्ञानेंचि सौरसु। *
 * मोक्षाचा तो ॥३२॥ तरी तया ज्ञानालागीं। कवणा पा योग्यता आंगीं। हें पाहतां जर्गीं। देखिला एक *
 * ॥३३॥ जें पाताळींचेंही निधान। दावील कीर अंजन। परी होआवे लोचन। पायाळाचे ॥३४॥ तैसें *
 * मोक्ष देईल ज्ञान। येथ कीर नाहीं आन। परी तेंचि थारे ऐसें मन। शुद्ध होआवें ॥३५॥ तरी *
 * विरक्तीवांचूनि केंहीं। ज्ञानासि तगणें नाहीं। हें विचारुनि ठाई। ठेविलें देवें ॥३६॥ आतां विरक्तीची *
 * कवण परी। जे येऊनि मनातें वरी। हेंहीं सर्वज्ञें श्रीहरी। देखिलें असे ॥३७॥ जे विषें रांधिली रससोये। *
 * जें जेवणारा ठाउवी होये। तें तो ताटचि सांडूनि जाये। जयापरी ॥३८॥ तैसी संसारा या समस्ता। *
 * जाणिजे जें आर्नित्यता। तें वैराग्य दवडितां। पाठीं लागे ॥३९॥ आतां आर्नित्यत्व या कैसें। तेंचि *
 * वृक्षाकारमिषें। सांगिजत असे विश्वेशें। पंचदशीं ॥४०॥ उपडिलें कवतिकें। झाड येरी मोहरा ठाके। *

* तें वेगें जैसें सुके। तैसें हें नव्हे जाण ॥४१॥ याचि एकेपरी। रूपकाचिया कुसरी। सारीतसे वारी। *
 * संसाराची ॥४२॥ करुनि संसार वावो। स्वरूपीं अहंते ठावो। होआवया अध्यावो। पंधरावा हा *
 * ॥४३॥ आतां हेंचि आघवें। ग्रंथगर्भीचें चांगावें। उपलविजेल जीवें। आकर्णिजे ॥४४॥ *

* **श्रीभगवानुवाच :** ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥ *
 * तरी महानंदसमुद्र। जो पूर्णपूर्णमाचंद्र। तो द्वारकेचा नरेंद्र। ऐसें म्हणे ॥४५॥ अगा पै पंडुकुमरा। *
 * येतां स्वरूपाचिया घरा। करीतसे आडवारा। विश्वाभासू जो ॥४६॥ तो हा जगडंबरु। नोहे येथ *
 * संसारु। हा जाणें महातरु। थांवला असे ॥४७॥ परी येरां रुखांसारिखा। तळीं मूळें वरी शाखा। तैसा *
 * नोहे म्हणोनि लेखा। नये कवणा ॥४८॥ आगी कां कुन्हाडी। होय रिगावा जरी बुडीं। तरी हो कां *
 * भलतेवढी। वरिचील वाढी ॥४९॥ जे तुटलिया मूळापाशी। उलंडेल कां शाखांशीं। परी तैशी गोठी *
 * कायशी। हा सोपा नव्हे ॥५०॥ अर्जुना हें कवतिका। सांगतां असे अलौकिका। जे वाढी अधोमुख। *
 * रुखा यया ॥५१॥ जैसा भानु उंची नेणो कें। रश्मिजाळ तळीं फांके। संसार हें कावरुखें। झाड तैसें *
 * ॥५२॥ आणि आथी नाथी तितुकें। रुंधलें असें येणेंचि एकें। कल्पांतींचेनि उदकें। व्योम जैसें *
 * ॥५३॥ कां रवीचां अस्तमानीं। आंधारेनि कोंदे रजनी। तैसा हाचि गगना। मांडला असे ॥५४॥ यया *
 * फळ ना चुंबितां। फूल ना तुरंबितां। जें कांही पंडुसुता। तें रुखुचि हा ॥५५॥ हा उर्ध्वमूळ आहे। परी *
 * उन्मूलिला नोहे। येणेंचि हा होये। शाडूळु गा ॥५६॥ आणि उर्ध्वमूळ ऐसें। निगदिलें कीर असे। परी *

* अधींही असोसें। मूळें यया ॥५७॥ पै बल्वचेचि महामारी। पिंपळा कां वडाचिया परी। जे पारंबियांमाझारीं। *
 * उहाळिया असती ॥५८॥ तेवींचि गा धनंजया। संसारतरु यया। अधींचि आथी खांदिया। हेंही नाहीं *
 * ॥५९॥ तरी ऊर्ध्वाहीकडे। शाखांचे मांदोडे। दिसताति अपाडें। सासिन्नले ॥६०॥ जालें गगनचि पां *
 * वेलीये। कां वारा मांडला रुखाचेनि आयें। नाना अवस्थात्रयें। उदयला असे ॥६१॥ ऐसा हा एका *
 * विश्वाकार विटंकु। उदयला जाण रुखु। ऊर्ध्वमूळ ॥६२॥ आतां ऊर्ध्व या कवण। येथें मूळ ते किं *
 * लक्षण। कां अधोमुखपण। शाखा कैसिया ॥६३॥ अथवा द्रुमा यया। अधीं जिया मूळिया। तिया कोण *
 * कैसिया। ऊर्ध्व शाखा ॥६४॥ आणि अश्वत्थु हा ऐसी। प्रसिद्धि कायसी। आत्मविदविलासीं। निर्णयो *
 * केला ॥६५॥ हें आघवेंचि बरवें। तुझिये प्रतीतीसि फावे। तैसेनि सांगों सोलिवें। विन्यासें गा ॥६६॥ *
 * परी ऐकें गा सुभगा। हा प्रसंगु असे तुजचि जोगा। कानचि करी हो सर्वांगा। हियें आथिलिया ॥६७॥ *
 * ऐसें प्रेमरसें सुरफुरें। बोलिलें जंव यादववीरें। तंव अवधान अर्जुनाकारें। मूर्त जालें ॥६८॥ देव *
 * निरुपिती तें थेंकुलें। येवढें श्रोतेपण फांकलें। जैसें आकाशा खेंव पसरिलें। दाहीं दिशीं ॥६९॥ *
 * श्रीकृष्णोक्तिसागरा। हा अगस्तीचि दुसरा। म्हणौनि घोंटु भरों पाहे एकसरा। अवघेयाचा ॥७०॥ *
 * ऐसी सोय सांडूनि खवळिली। आवडी अर्जुनीं देवें देखिली। तेथ जालेनि सुखें केली। कुरवंडी तया *
 * ॥७१॥ मग म्हणे धनंजया। तें उर्ध्व गा तरु यया। येणें रुखेंचि कां जया। ऊर्ध्वता गमे ॥७२॥ एन्हवीं *

* मध्य ऊर्ध्व अधा हे नाहीं जेथ भेदा। अद्वयासीं एकवदा जया ठायीं ॥७३॥ जो नाइकिजतां नादु। जो *
 * असौरभ्य मकरंदु। जो आंगाथिला आनंदु। सुरतेंविण ॥७४॥ जया जें आन्हां परौतें। जया जें पुढें *
 * मागौतें। दिसतेनविण दिसते। अदृश्य जें ॥७५॥ उपाधीचा दुसरा। घालितां वोपसरा। नामरूपाचा *
 * संसारा। होय जयातें ॥७६॥ ज्ञातृज्ञेयाविहीन। नुसधेंचि जें ज्ञान। सुखा भरलें गगन। गाळीं व जें *
 * ॥७७॥ जें कार्य ना कारण। जया दुजें ना एकपण। आपणयां जें जाण। आपणचि ॥७८॥ ऐसें वस्तु *
 * जें साचें। तें ऊर्ध्व गा यया तरुचें। तेथ आर घेणें मूळाचें। तें ऐसें असे ॥७९॥ तरी माया ऐसी *
 * ख्याती। नसतीच यया आथी। कां वांझेची संतती। वानणें जैशी ॥८०॥ तैसी सत् ना असत् होये। *
 * जे विचाराचें नाम न साहे। ऐसेया परीची आहे। अनादि म्हणती ॥८१॥ जे भवद्रुमबीजिका। जे *
 * प्रपंचाची भूमिका। विपरीतज्ञानदीपिका। सांचली जे ॥८२॥ जे नानाशक्तींची मांदुसा। जे जगदभ्राचें *
 * आकाश। जे आकारजाताचें दुसा। घडी केलें ॥८३॥ ते माया वस्तूचां ठायीं। असे जैसेनि नाहीं। मग *
 * वस्तुप्रभाचि पाही। प्रगट होय ॥८४॥ जेव्हां आपणया आली निदा। करी आपणपें जेवीं मुग्धा। कां *
 * काजळी आणी मंदा। प्रभा दीपीं ॥८५॥ स्वप्नीं प्रियापुढें तरुणांगी। निदेली चेवऊनि वेगीं। *
 * आलिंगिलेनिवीण आलिंगी। सकामु करी ॥८६॥ तैसी स्वरूपीं जाली माया। आणी स्वाश्रयीं नेणणे *
 * धनंजया। तेंचि रुखा यया। मूळ पहिलें ॥८७॥ वस्तूसी आपुला जो अबोधु। तो ऊर्ध्वी आदुळैजे *
 * कंदु। वेदांतींही हाचि प्रसिद्धु। बीजभावो ॥८८॥ घन अज्ञानसुषुप्ती। तो बीजांकुरभावो म्हणती। येर *

* स्वप्न हन जागृती। हा फळभावो तयाचा ॥८९॥ ऐसी यया वेदांतीं। निरूपणभाषाप्रतीती। परी तें *
 * असो प्रस्तुतीं। अज्ञान मूळ ॥९०॥ तें ऊर्ध्व आत्मा निर्मळें। अधोर्ध्व सूचिती मूळें। बळिया बांधोनि *
 * आळें। मायायोगाचें ॥९१॥ मग आधिर्लीं सदेहांतरें। उठती जियें अपारें। तें चौपासि घेऊनि आगारें। *
 * खोलावती॥ ९२॥ ऐसें भवद्रुमाचें मूळ। हें ऊर्ध्वीं करी बळ। मग आणियांचें बेंचळ। अधीं दावी *
 * ॥९३॥ तेथ चिदवृत्ती पहिलें। महत्तत्त्व उमललें। तें पान वाल्हें दुल्हें। एक निघे ॥९४॥ मग *
 * सत्त्वरजतमात्मकु। त्रिविध अहंकारु जो एकु। तो तिवणा अधोमुखु। डिरु फुटे ॥९५॥ तो बुद्धीची *
 * घेऊनि आगारी। भेदाची वृद्धि करी। तेथें मनाचें डाळ धरी। साजेपणें ॥९६॥ ऐसा मूळाचिया *
 * गाढिका। विकल्परस कोंवळिका। चित्तचतुष्टय डाहाळिका। कोंभैजे तो ॥९७॥ मग आकाश वायु *
 * द्योतक। आप पृथ्वी हे पांच फोंक। महाभूतांचे सारोखा। सरळे होती ॥९८॥ तैसींचि श्रोत्रादि तन्मात्रें। *
 * तियें अंगवसां गर्भपत्रें। लुळलुळितें विचित्रें। उमळती गा ॥९९॥ तेथ शब्दांकुर वरिपडी। श्रोत्रा वाढी *
 * देव्हडी। होता करित कांडीं। आकांक्षेचीं ॥१००॥ अंगत्वचेचे वेलपल्लवा। स्पर्शाकुरीं घेती धांवा। तेथ *
 * बांबळ पडे आर्भिनवा। विकारांचें ॥१०१॥ पाठीं रूपपत्र पेलोवेलीं। चक्षु लांब तें काडें घाली। तेथ *
 * व्यामोहता भली। पाहाळीं जाय ॥१०२॥ आणि रसाचें आंगवसें। वाढतां वेगें बहुवसें। जिव्हे आर्तीची *
 * असोसें। निघती बेंचें ॥१०३॥ तैसेंचि कोंभैलेनि गंधें। घ्राणाची डिरी थांवु बांधे। तेथ तळु घे स्वानंदें। *

* प्रलोभाचा ॥१०४॥ एवं महदहंबुद्धी। मनं महाभूतसमृद्धि। इया संसाराचिया अवधि। सासनिये ॥१०५॥ *
 * किंबहुना इहीं आठें। आंगीं हा आर्धिक फांटे। परी शिंपीचि येवढें उमटे। रूपें जेवीं ॥१०६॥ कां *
 * समुद्राचेनि पैसारें। वरी तरंगता असारे। तैसें ब्रह्मचि होय वृक्षाकारें। अज्ञानमूळ ॥१०७॥ आतां याचा *
 * हाचि विस्तारु। हाचि यया पैसारु। जैसा आपणपें स्वप्नीं परिवारु। येकाकिया ॥१०८॥ परी तें असो *
 * हें ऐसें। कावरें झाड उससे। यया महदादि आरवसें। अधोशाखा ॥१०९॥ आणि अश्वत्थु ऐसें ययातें। *
 * म्हणती जे जाणते। तेंही परिस हो येथें। सांगिजेल ॥११०॥ तरी श्वः म्हणिजे उखा। तोंवरि *
 * एकसारिखा। नाहीं निर्वाहो यया रुखा। प्रपंचरूपा ॥१११॥ जैसा न लोटतां क्षणु। मेघु होय नानावर्णु। *
 * कां विजु नसे संपूर्णु। निमेषभरी ॥११२॥ ना कांपतया पद्मदळा। वरीलिया बैसका नाहीं जळा। कां *
 * चित्त जैसें व्याकुळा। माणुसाचें ॥११३॥ तैसीचि ययाची स्थिती। नासत जाय क्षणक्षणाप्रती। म्हणौनि *
 * ययातें म्हणती। अश्वत्थु हा ॥११४॥ आणि अश्वत्थु येणें नांवें। पिंपळु म्हणती स्वभावे। परी तो *
 * आर्भिप्रावो नव्हे। श्रीहरीचा ॥११५॥ एन्हवीं पिंपळु घडतां विखीं। मियां गति देखिली असे निकी। परी *
 * तें असो काय लौकिकीं। हेतु काज ॥११६॥ म्हणौनि हा प्रस्तुतु। अलौकिकु परियेसा ग्रंथु। तरी *
 * क्षणिकत्वेचि अश्वत्थु। बोलिजे हा ॥११७॥ आणीकही येकु थोरु। यया अव्ययत्वाचा डगरु। आथी *
 * परी तो भीतरु। ऐसा असे ॥११८॥ जैसा मेघांचेनि तोंडें। सिंधु एके आंगें काढे। आणि नदी येरीकडे। *
 * भरितीचि असती ॥११९॥ तेथ वोहटे ना चढे। ऐसा परिपूर्णुचि आवडे। परी ते फुली जंव नुघडे। *

* मेघांनदींची ॥१२०॥ ऐसें या रुखाचें होणेंजाणें। न तर्कें होतेनि वहिलेपणें। म्हणौनि लोकु यातें *
 * म्हणे। अव्ययु हा ॥२१॥ एन्हवीं दानशीळु पुरुषु। वेंचकपणेंचि संचकु। तैसा व्ययेंही हा रुखु। अव्ययो *
 * गमे ॥२२॥ जातां वेगें बहुवसें। न वचे कां भूमी रुतलें असे। रथाचें चक्र दिसे। जियापरी ॥२३॥ तैसें *
 * काळातिक्रमें जे वाळे। ते भूतशाखा जेथ गळे। तेथ कोडीवरी उमाळे। उठती आणिक ॥२४॥ परी *
 * येकी केधवां गेली। शाखाकोडी केधवां जाली। हें नेणवे जेवीं उमललीं। आषाढअश्रें ॥२५॥ महाकल्पाचां *
 * शेवटीं। उदेलिया उमळती सृष्टी। तैसेंचि आणिकीचें दांग उठी। सासिन्नलें ॥२६॥ संहारवातें प्रचंडें। *
 * पडती प्रळयांतींचीं सालडें। तंव कल्पादीचीं जुंबाडें। पालहेजती ॥२७॥ रिगे मन्वंतर मनूपुडें। *
 * वंशावरी वंशांचें मांडे। जैसी इक्षुवृद्धी कांडेनकांडें। जिंके जेवीं ॥२८॥ कलियुगांतीं कोरडीं। चहूं *
 * युगांचीं सालें सांडी। तव कृतयुगाची पेली देव्हडी। पडे पुढती ॥२९॥ वर्ततें वर्ष जाये। तें पुढिला *
 * मुळहारी होये। जैसा दिवस जात कीं येत आहे। हें चोजवेना ॥१३०॥ जैशा वारियाचां झुळकां। *
 * सांदा ठाउवा नव्हे देखा। तैसिया उठती पडती शाखा। नेणों किती ॥३१॥ एकी देहाची डिरी तुटे। *
 * तंव देहांकुरीं बहुवी फुटे। ऐसेनि भवतरु हा वाटे। अव्ययो ऐसा ॥३२॥ जैसें वाहतें पाणी जाय वेगें। *
 * तैसेंचि आणिक मिळे मागें। तेवीं असंतचि आर्सिजे जगें। मानिजे संत ॥३३॥ कां लागोनि डोळां *
 * उघडे। तंव कोडीवरी घडे मोडे। तें नेणतया तरंगु आवडे। नित्यु ऐसा ॥३४॥ वायसा एकें बुबुळें *

* दोहींकडे। डोळा चाळितां अपाडें। दोन्ही आथी ऐसा पडे। भ्रमु जेवीं जगा ॥३५॥ पैं भिगोंरी निधिये *
 * पडली। ते गमे भूमीसी जैसी जडली। ऐसा वेगातिशयो भुली। हेतु होय ॥३६॥ हें बहु असो झडती। *
 * आंधारें भोवंडितां कोलती। ते दिसे जैसी आयती। चक्राकार ॥३७॥ हा संसारवृक्षु तैसा। मोडतु *
 * मांडतु सहसा। न देखोनि लोकु पिसा। अव्ययो मानी ॥३८॥ परि ययाचा वेगु देखे। जो हा क्षणिक *
 * ऐसा वोळखे। जाणे कोडिवेळां निमिखें। होत जात ॥३९॥ नाहीं अज्ञानावांचूनि मूळ। ययाचें आर्सिलेपण *
 * टवाळ। ऐसें झाड सिनसाळ। देखिलें जेणें ॥१४०॥ तयातें गा पंडुसुता। मी सर्वज्ञुही म्हणें जाणता। *
 * पैं वाग्ब्रह्मसिद्धांता। वंद्यु तोचि ॥४१॥ योगजाताचें जोडलें। तया एकासीचि उपेगा गेलें। किंबहुना *
 * जियालें। ज्ञानही तेणें ॥४२॥ असो बहु हें बोलणें। वानिजेल तो कवणे। जो भवरुखु जाणे। उखि *
 * ऐसा ॥४३॥

* अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः। अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥२॥
 * मग ययाचि प्रपंचरूपा। अधोशाखिया पादपा। डाहाळिया जाती उमपा। ऊर्ध्वाही उजू ॥४४॥
 * आणि अधीं फांकलीं डाळें। तियें होती मूळें। तयांही तळीं पघळे। वेल पालवु ॥४५॥ ऐसें जें आम्हीं।
 * म्हणितलें उपक्रमीं। तेंही परिसें सुगमीं। बोलीं सांगों ॥४६॥ तरी बद्धमूळें अज्ञानें। महदादिकीं
 * शासनें। वेदांचीं थोरवनें। घेऊनियां ॥४७॥ परि आधीं तंव स्वेदजा। जारज उद्भिज मणिज। हे
 * बुडौनि महाभुज। उठती चारी ॥४८॥ यया एकैकाचेनि आणगटें। चौन्यांशीं लक्षधा फुटे। ते वेळीं

* जीवशाखीं फांटे। सेंघ होती ॥४९॥ प्रसवती शाखा सरळिया। नानासृष्टि डाहाळिया। आड फांटती *
 * माळिया। जातिचिया ॥१५०॥ स्त्री पुरुष नपुंसकें। हे व्यक्तिभेदांचे टके। आंदोळती आंगिकें। *
 * विकारभारें ॥५१॥ जैसा वर्षाकाळु गगनीं। पालहेजे नवघनीं। तैसें आकारजात अज्ञानीं। वेलीं जाय *
 * ॥५२॥ मग शाखांचेनि आंगभारें। लवोनि गुंफती परस्परें। गुणक्षोभाचे वारे। उदयजती ॥५३॥ तेथ *
 * तेणें अचाटें। गुणांचेनि झडझडाटें। तिहीं ठायीं हा फांटे। ऊर्ध्वमूळ ॥५४॥ ऐसा रजाचिया झुळुका। *
 * झडाडितां आगळिका। मनुष्यजातीशाखा। थोरावती ॥५५॥ तिया ऊर्ध्वीं ना अधीं। माझारींचि *
 * कोंदाकोंदी। आड फांटती खांदी। चतुर्वर्णाचिया ॥५६॥ तेथ विधिनिषेधीं सपल्लव। वेदवाक्यांचे *
 * आर्भिनव। पालव डोलती बरव। आणित्ती तयां ॥५७॥ अर्थु कामु पसरो। अग्रवनें घेती थारे। तेथ *
 * क्षणिकें पदांतरें। इहभोगांचीं ॥५८॥ तेथ प्रवृत्तीचेनि वृद्धिलोभें। खांकरेजती शुभाशुभें। नानाकर्मांचे *
 * खांबे। नेणों किती ॥५९॥ तेवींचि भोगक्षयें मागिलें। पडती देहांचीं बुडसळें। तंव पुढां वाढी पेलें। *
 * नवेया देहांची ॥६०॥ आणि शब्दादिक सुहावे। सहज रंगें हवावे। विषयपल्लव नवे। नीचचि होती *
 * ॥६१॥ ऐसे रजोवातें प्रचंडें। मनुष्यशाखांचे मांदोडे। वाढती तो एथ रुढे। मनुष्यलोकु ॥६२॥ *
 * तैसाचि तो रजाचा वारा। नावेक धरी वोसरा। मग वाजों लागे घोरा। तमाचा तो ॥६३॥ तेधवां याचि *
 * मनुष्यशाखा। नीच वासना अधीं देखा। पालहेजती डाळुका। कुकर्माचिया ॥६४॥ अप्रवृत्तींचे खणुवाळे। *

* फोक निघती सरळे। घेत पान पालव डाळें। प्रमादाचीं ॥६५॥ बोलती निषेधनियमें। जिया ऋचा *
 * यजुःसामें। तो पाला तया घुमे। टकेयावरी ॥६६॥ प्रतिपादित्ती आर्भिंचार। आगम जे परमारा। तेही *
 * पानीं घेती प्रसरा वासना वेली ॥६७॥ तंव तंव होती थोराडें। अकर्माचीं तळबुडें। आणि जन्मशाखा *
 * पुढें पुढें। घेती धांव ॥६८॥ तेथ चांडाळादि निकृष्टा। दोषजातीचा थोर फांटा। जाळ पडे कर्मभ्रष्टां। *
 * भुलोनियां ॥६९॥ पशु पक्षी सूकर। व्याघ्र वृश्चिक विखारा। हे आडशाखानिकर। थोरावती ॥७०॥ *
 * परी ऐशा शाखा पांडवा। सर्वांगींही नित्य नवा। निरयभोग यावा। फळाचा तो ॥७१॥ आणि *
 * हिंसाविषयपुढारी। कुकर्मसंगें धुरधुरी। जन्मवरी आगारी। वाढतीचि असे ॥७२॥ ऐसे होती तरु *
 * तृण। लोह लोष्ट पाषाण। इया खांदिया तेवीं जाण। फळेंही हेंचि ॥७३॥ अर्जुना गा अवधारीं। *
 * मनुष्यालागोनि इया परी। वृद्धि स्थावरांतवरी। अधोशाखांची ॥७४॥ म्हणोनि जीं मनुष्यडाळें। येचि *
 * जाणावीं अधींचीं मूळें। जे एथूनि मग पघळे। संसारतरु ॥७५॥ एन्हवीं ऊर्ध्वींचें पार्था। मुद्दल मूळ *
 * पाहतां। अधींचिया मध्यस्था। शाखा इया ॥७६॥ परी तामसीं सात्त्विकीं। सुकृतदुष्कृतात्मकी। *
 * विरुढती या शाखीं। अधोर्ध्वींचां ॥७७॥ आणि वेदत्रयीचिया पाना। नये अन्यत्र लागों अर्जुना। जे *
 * मनुष्यावांचूनि विधाना। विषो नाही ॥७८॥ म्हणोनि तनु मानुषा। इया ऊर्ध्वमूळौनि जरी शाखा। *
 * तरी कर्मवृद्धीसि देखा। इयाचि मूळें ॥७९॥ आणि आनीं तरी झाडीं। शाखा वाढतां मुळें गाढीं। मूळ *
 * गाढें तंव वाढी। पैस आथी ॥८०॥ तैसेंचि इया शरीरा। कर्में तंव देहा संसारा। आणि देह तंव *

* व्यापारा। म्हणोंचि नये ॥८१॥ म्हणोंनि देहें मानुषें। इयें मुळें होती न चुके। ऐसें जगज्जनकें। बोलिलें *
 * तेणें ॥८२॥ मग तमाचें तें दारुण। स्थिरावलेया वाउधाण। सत्त्वाची सुटे सत्राण। वाहुटळी ॥८३॥ *
 * तें याचि मनुष्याकारा। मुळीं सुवासना निघती आरा। घेऊनी फुटती कोंबारा। सुकृतांकुरीं ॥८४॥ *
 * उकलतेनि उन्मेखें। प्रज्ञाकुशलतेंचि तिखें। डिरिया निघती निमिखें। बाबळैजुनी ॥८५॥ मतीचे *
 * सोट वावे। घालिती स्फूर्तीचेनि थांबें। बुद्धि प्रकाश घे धांवें। विवेकाचेनि ॥८६॥ तेथ मेधारसें सगर्भा *
 * आस्थापत्रीं सबोंब। सरळ निघती कोंभ। सद्गुतीचे ॥८७॥ सदाचाराचिया सहसा। टका उठती *
 * बहुवसा। घुमघुमिति घोषां। वेदपद्यांचां ॥८८॥ शिष्टागमविधानें। विविधयागवितानें। इयें पानावरी *
 * पानें। पांजरती ॥८९॥ ऐशा यमदमीं घोंसाळिया। उठती तपाचिया डाहाळिया। देती वैराग्यशाखा *
 * कवळिया। वेल्हाळपणें ॥९०॥ विशिष्टां व्रतांचे फोक। धीराचां अणगटीं तिख। जन्मवेगें ऊर्ध्वमुखा *
 * उंचावती ॥९१॥ मार्जी वेदांचा पाला दाटा। तो करी सुविद्येचा झडझडाटा। जंव वाजे अचाटा। *
 * सत्त्वानिळु तो ॥९२॥ तेथ धर्मडाळ बाहाळी। दिसती जन्मशाखा सरळी। तिया आड फुटती फळीं। *
 * स्वर्गादिकीं ॥९३॥ पुढां उपरति रागें लोहिवी। धर्ममोक्षाची शाखा पालवी। लाहलाहात नित्य नवी। *
 * वाढतीचि असे ॥९४॥ पै रविचंद्रादि ग्रहवरा। पितृ ऋषी विद्याधरा। हे आडशाखा प्रकारा। पैसु घेती *
 * ॥९५॥ याहीपासून उंचवडें। गुढले फळाचेनि बुडें। इंद्रादिक ते मांदोडे। थोर शाखांचे ॥९६॥ मग *

* तयांही उपरी डाहाळिया। तपोज्ञानीं उंचावलिया। मरीचि कश्यपादि इया। उपरी शाखा ॥९७॥ एवं *
 * माळोवाळी उत्तरोत्तरु। ऊर्ध्वशाखांचा हा पैसारु। बुडीं साना अग्नीं थोरु। फलाढ्यपणें ॥९८॥ वरी *
 * उपरिशाखाही पाठीं। येती फळभार ते किरीटी। ते ब्रह्मेशांत अणगटीं। कोंभ निघती ॥९९॥ फळाचेनि *
 * वोझेपणें। ऊर्ध्वीं वोवांडें दुणें। जंव माघौतें बैसणें। मूळींचि होय ॥१००॥ प्राकृताही तरी रुखा। जे *
 * फळें दाटलीं होय शाखा। ते वोवांडली देखा। बुडासि ये ॥१०१॥ तैसें जेथूनि हा आघवा। संसारतरुचा *
 * उठावा। तियें मूळीं टेंकती पांडवा। वाढतेनि ज्ञानें ॥१०२॥ म्हणौनि ब्रह्मेशानापरौतें। वाढणें नाहीं *
 * जीवातें। तेथूनि मग वरौतें। ब्रह्मचि कीं ॥१०३॥ परी हें असो ऐसें। ब्रह्मादिक ते आंगवसें। ऊर्ध्वमूळासरिसें। *
 * न तुकती गा ॥१०४॥ आणीकही शाखा उपरता। जिया सनकादिकनामें विख्याता। तिया फळीं मूळीं *
 * नाडळतां। भरलिया ब्रह्मीं ॥१०५॥ ऐसी मनुष्यालागौनि जाणावी। ऊर्ध्वीं ब्रह्मादिशेष पालवी। शाखांची *
 * वाढी बरवी। उंचावे पै ॥१०६॥ पार्था ऊर्ध्वींचिया ब्रह्मादि। मनुष्यत्वचि होय आदि। म्हणौनि इयें अधीं। *
 * म्हणितलीं मूळें ॥१०७॥ एवं तुज अलौकिकु। हा अधोर्ध्वशाखु। सांगितला भवरुखु। ऊर्ध्वमूळ ॥१०८॥ *
 * आणि अधींचीं हीं मूळें। उपपत्तीं परिसविली सविवळें। आतां परिस उन्मूळें। कैसेनि हा ॥१०९॥ *

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।

अश्वत्थमेनं सुविरुढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा ॥३॥

परी तुझां हन पोटीं। ऐसें गमेल किराटी। जे एवढें झाड उत्पाटी। ऐसें कायि असे ॥१०९॥ कें

* ब्रह्मयाचां शेवटवरी। ऊर्ध्व शाखांची थोरी। आणि मूळ तंव निराकारी। ऊर्ध्वीं असे ॥११॥ हा *
 * स्थावराही तळीं। फांकत असे अधींचां डाळीं। मार्जी धांवतसे दुजां मूळीं। मनुष्यरूपीं ॥१२॥ ऐसा *
 * गाढा आणि अफाटु। आतां कोण करी यया शेवटु। तरी झणी हा हळुवटु। धरिसी भावो ॥१३॥ परी *
 * हा उन्मूळावया दोषें। येथ सायासचि कायिसे। काय बाळा बागुल देशें। दवडावा आहे ॥१४॥ *
 * गंधर्वदुर्ग कायी पाडावे। काय शशविषाण मोडावें। होआवें मग तोडावें। खपुष्प कीं ॥१५॥ तैसा *
 * संसारु हा वीरा। रूख नाही साचोकारा। मा उन्मूळणीं दरा। कायिसा तरी ॥१६॥ आम्हीं सांगितली *
 * जे परी। मूळडाळांची उजरी। ते वांझेचि घरभरीं। लेंकुरें जैशीं ॥१७॥ काय कीजती चेइलेपणीं। स्वप्नींची *
 * तियें बोलणीं। तैशी जाण ते काहाणी। दुगळीचि ते ॥१८॥ वांचूनि आम्हीं निरुपिलें जैसें। ययाचें *
 * अचळ मूळ असे तैसें। आणि तैसाचि जरी हा असे। साचोकारा ॥१९॥ तरी कोणाचेनि संतानें। *
 * निपजती या उन्मूळणें। काय फुंकिलिया गगनें। जाइजेल गा ॥२०॥ म्हणौनि पै धनंजया। आम्हीं *
 * वानिलें रूप तें माया। कासवीचेनि तुपें राया। वोगरिलें जैसें ॥२१॥ मृगजळाचीं गा तळीं। तियें दिठी *
 * दुरुनिचि न्याहाळीं। वांचूनि तेणें पाणियें साळी केळी। लाविसी काई ॥२२॥ मूळ अज्ञानचि तंव *
 * लटिकें। मा तयाचें कार्य हें केतुकें। म्हणौनि संसाररुख सत्य कें। वावोचि गा ॥२३॥ आणि अंतु यया *
 * नाही। ऐसें बोलिजे जें कांहीं। तेंहीं साचचि पाहीं। परी येकी ॥२४॥ तरी प्रबोधु जंव नोहे। तंव निद्रे *

* काय अंतु आहे। कीं रात्री न सरे तंव न पाहे। तया आरौतें ॥२५॥ तैसा जंव पार्था। विवेकु नुधवी *
 * माथा। तंव अंतु नाही अश्वत्था। भवरूपा या ॥२६॥ वाजतें वारें निवांता। जंव न राहे जेथिंचें तेथा *
 * तंव तरंगता अनंता। म्हणावीचि कीं ॥२७॥ म्हणौनि सूर्य जें हारपे। तें मृगजळाभासु लोपे। कां प्रभा *
 * जाय दीपें। मालवलेनि ॥२८॥ तैसें मूळ आर्विद्या खाये। तें ज्ञान जें उभें होये। तेंचि यया अंतु आहे। *
 * एन्हवीं नाही ॥२९॥ तेंवींचि हा अनादी। ऐसी आथी शाब्दी। तो आळु नोहे नुरोधी। बोल तया *
 * ॥२३०॥ जे संसारवृक्षाचां ठायीं। साचोकार तंव नाही। मा नाही तया आदि काई। कोण होईल *
 * ॥२३१॥ जो साच जेथूनि उपजे। तयातें आदि हें साजे। आतां नाहीचि तो म्हणिजे। कोटूनियां *
 * ॥२३२॥ म्हणौनि जन्मे ना आहे। तैसिया सांगों कवण माये। यालागीं नाहीपणेंचि होये। अनादि हा *
 * ॥२३३॥ वांझेचिया लेंका। केंची जन्मपत्रिका। नभीं निळी भूमिका। कें कल्पूं पां ॥२३४॥ व्योमकुसुमाचा *
 * पांडवा। कवणें देंढ तोडावा। म्हणौनि नाही ऐसिया भवा! आदि केंची ॥२३५॥ जैसें घटाचें नाहीपण। *
 * असतचि असे केलेनिवीण। तैसा समूळ वृक्ष जाण। अनादि हा ॥२३६॥ अर्जुना ऐसेनि पाहीं। आद्यंतु *
 * ययासि नाही। मार्जी स्थिती आभासे कांहीं। परी टवाळ ते गा ॥२३७॥ ब्रह्मगिरीहूनि न निगे। आणि *
 * समुद्रींही कीर न रिगे। तरी मार्जी दिसे वाउगें। मृगांबु जैसें ॥२३८॥ तैसा आद्यंतीं कीर नाही। आणि *
 * साचही नोहे कहीं। परि लटिकेपणाची नवाई। पडिभासे गा ॥२३९॥ नाना रंगीं गजबजे। जैसें इंद्रधनुष्य *
 * देखिजे। तैसा नेणतया आपजे। आहे ऐसा ॥२४०॥ ऐसेनि स्थितीचिये वेळे। भुलवी अज्ञानाचे डोळे। *

* लाघवी हरी मेखळे। लोक जैसा ॥४१॥ आणि नसतीचि श्यामिका। व्योमीं दिसे तैसी दिसो कां। तरी *
 * दिसणेंही क्षणा एका। होय जाय ॥४२॥ स्वप्नींही मानिलें लटिकें। तरी निर्वाहो कां एकसारिखें। तेवीं *
 * आभासु हा क्षणिके। रीतीचा गा ॥४३॥ देखतां आहे आवडे। घेऊं जाइजे तरी नातुडे। जैसा टिकु *
 * कीजे माकडें। जळामाजां ॥४४॥ तरंगभंगु सांडीं पडे। विजूही न पुरे होडे। आभासासि तेणें पाडें। *
 * होणें जाणें गा ॥४५॥ जैसा ग्रीष्मशेर्षीचा वारा। नेणजे समोर की पाठीमोरा। तैसी स्थिती नाहीं *
 * तरुवरा। भवरूपा यया ॥४६॥ एवं आदि ना अंत स्थिती। ना रूप ययासि आथी। आतां कायसी *
 * कुंथाकुंथी। उन्मूलणीं गा ॥४७॥ आपुलिया अज्ञानासाठीं। नव्हता थांवला किरीटी। तरि आतां *
 * आत्मज्ञानाचेनि लोटीं। खांडेनि गा ॥४८॥ वांचूनि ज्ञानेंवीण एकें। उपाय करिसी जितुके। तिहीं *
 * गुंफसि आर्धिकें। रुखीं झये ॥४९॥ मग किती खांदोखांदीं। यया हिंडावें ऊर्ध्वीं अर्धीं। म्हणौनि *
 * मूलचि अज्ञान छेदीं। सम्यग्ज्ञानें ॥२५०॥ एन्हवीं दोरीचिया उरगा। डांगा मेळवितां पै गा। तो वावोचि *
 * भारु गा। केला होय ॥५१॥ तरावया मृगजळाची गंगा। डोणीलागीं धांवतां दांगा-। मार्जी वोहळें *
 * बुडिजे पै गा। साच जेवीं ॥५२॥ तेवीं नाथिलिया संसारा। उपायीं जाचतया वीरा। आपणपें लोपे *
 * वारा। विकोपीं जाय ॥५३॥ म्हणोनि स्वप्नींचेया भया। ओखद चवोचि धनंजया। तेवीं अज्ञानमूळा *
 * यया। ज्ञानचि खड्ग ॥५४॥ परि तेचि लीला परजवे। तैसैं वैराग्याचें नीच नवें। अभंगबळ होआवें। *

* बुद्धीसी गा ॥५५॥ उटिलेनि वैराग्यें जेणें। हा त्रिवर्गु ऐसा सांडणें। जैसैं वमुनियां सुणें। आतांचि गेलें *
 * ॥५६॥ हा ठायवरी पांडवा। पदार्थजातीं आघवा। विटवी तो होआवा। वैराग्यलाटु ॥५७॥ मग *
 * देहाहंतेचें दळें। सांडूनि एकेचि वेळे। प्रत्यकबुद्धी करतळें। हातवसावें ॥५८॥ निसिलें विवेकसाहणे। *
 * जे ब्रह्माहमस्मिबोधें सणाणें। मग पुरतेनि बोधें उटणें। एकलेंचि ॥५९॥ परि निश्चयाचें मुष्टिबळा *
 * पाहावें एकदोनी वेळा। मग तुळावें आर्ति चोखाळा। मननवेरी ॥२६०॥ पाठीं हतियेरां आपणयां। *
 * निदिध्यासैं एक जालिया। पुढां दुजें नुरेल घाया-। पुरतें गा ॥६१॥ तें आत्मज्ञानाचें खांडें। अद्वैतप्रभेचेनि *
 * वाडें। नेदील उरों कवणेकडे। भववृक्षासि ॥६२॥ शरदागमींचा वारा। जैसा केरु फेडी अंबरा। कां *
 * उदयला रवी आंधारा। घोंटु भरी ॥६३॥ नाना उपवढ होतां खेंवो। नुरे स्वप्नसंभ्रमाचा ठावो। *
 * स्वप्रतीतिधारेचा वाहो। करील तैसैं ॥६४॥ तेव्हां ऊर्ध्व कां ऊर्ध्वींचें मूळ। कां अर्धींचें हन शाखाजाळा *
 * तें कांहींचि न दिसे मृगजळा। चांदिणां जेवीं ॥६५॥ ऐसेनि गा वीरनाथा। आत्मज्ञानाचिया खड्गलता। *
 * छेदुनियां भवाश्चत्था। ऊर्ध्वमूळातें ॥६६॥

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः।

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥

* मग इदंतेसि वाळलें। जें मीपणेंवीण डाहारलें। तें रूप पाहिजे आपलें। आपणचि ॥६७॥ परि *
 * दर्पणाचेंनि आधारें। एकचि करुन दुसरें। मुख पाहाती गव्हारें। तैसैं नको हें ॥६८॥ हें पाहाणें ऐसैं *

* असे वीरा। जैसा न मोडलिया विहिरा। मग आपलिया उगमीं झरा। भरोनि ठाके ॥६९॥ नातरी *
 * आटलिया अंभा निजबिंबीं प्रतिबिंबा नेहटे कां नर्भीं नभा घटाभावीं ॥२७०॥ ना ना इंधनांशु *
 * सरलेया। वन्हि परते जेवीं आपणपयां। तैसें आपेंआप धनंजया। न्याहाळणें जें गा ॥७१॥ जिव्हे *
 * आपली चवी चाखणें। चक्षु निज बुबुळ देखणें। आहे तया ऐसें निरीक्षणें। आपुलें पै ॥७२॥ कां प्रभेसि *
 * प्रभा मिळे। गगन गगनावरी लोळे। नाना पाणी भरलें खोळे। पाणियाचिये ॥७३॥ आपणचि आपणयातें। *
 * पाहिजे जें अद्वैतें। तें ऐसें होय निरुतें। बोलिजतु असे ॥७४॥ जें पाहिजतेनवीण पाहिजे। कांहीं *
 * नेणणाचि जाणिजे। आद्यपुरुष कां म्हणिजे। जया ठायातें ॥७५॥ तेथही उपाधीचा वोथंबा। घेऊनि *
 * श्रुति उधविती जिभा। मग नामरूपाचा बडंबा। करिती वायां ॥७६॥ पै भवस्वर्गा उबगले। मुमुक्षु *
 * योगज्ञाना वळघले। पुढती न यों इया निगाले। पैजा जेथ ॥७७॥ संसाराचिया पायां पुढां। पळती *
 * वीतराग होडा। ओलांडोनि ब्रह्मपदाचा कर्मकडा। घालिती मागां ॥७८॥ अहंतादिभावां आपुलियां। *
 * झाडा देऊनि आघवेयां। पत्र घेती ज्ञानिये जया। मूळघरासी ॥७९॥ जिये कां वस्तूचें नेणणें। *
 * आणिलें थोर जगा जाणणें। नाहीं तें नांदविलें जेणें। मी तूं जर्गी ॥२८०॥ पै जेथुनी हे एवढी। *
 * विश्वपरंपरेची वेलांडी। वाढती आशा जैसी कोरडी। निदैवाची ॥८१॥ पार्था तें वस्तु पहिलें। आपणपें *
 * पै आपुलें। पाहिजे जैसें हिंवलें। हिंव हिंवें ॥८२॥ आणीकही एक तया। वोळखण असे धनंजया। तरी *

* जयां कां भेटलिया। येणेंचि नाहीं ॥८३॥ परी तया भेटती ऐसे। जे ज्ञानें सर्वत्र सरिसे। महाप्रळयांबूचें *
 * जैसें। भरलेपण ॥८४॥

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।

द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥५॥

* जया पुरुषांचें कां मना सांडोनि गेलें मोहमाना। वर्षातीं जैसें घना आकाशातें ॥८५॥ निकवड्या *
 * निष्ठुरा। उबगिजे जेवीं सोयरा। तैसे नागवती विकारां। वेटाळूं जे ॥८६॥ फळली केळी उन्मळे। तैसी *
 * आत्मलाभें प्रबळें। जयांची क्रिया ढाळेंढाळें। गळती आहे ॥८७॥ आगी लागलिया रुखीं। देखोनि *
 * सैरा पळती पक्षी। तैसें सांडिले अशेखीं। विकल्पीं जे ॥८८॥ आइकें सकळ दोषतृणीं। अंकुरिजती *
 * जिये मेदिनी। तिये भेदबुद्धीची काहाणी। नाहीं जयातें ॥८९॥ सूर्योदयासरिसी। रात्री पळोनि जाय *
 * आपैसी। गेली देहअहंता तैसी। आर्विद्येसवें ॥२९०॥ पै आयुष्यहीना जीवातें। शरीर सांडी जेवीं *
 * अवचितें। तेवीं निदसुरें द्वैतें। सांडिले जे ॥९१॥ लोहाचें सांकडें परिसा। न जोडे अंधारू रवि जैसा। *
 * द्वैतबुद्धीचा तैसा। सदा दुकाळ जया ॥९२॥ अगा सुखदुःखाकारें। द्वंद्वें देहीं जियें गोचरें। तियें जयां *
 * कां समोरें। होतीचिना ॥९३॥ स्वप्नींचें राज्य कां मरण। नोहे हर्षशोकासि कारण। उपवढलिया *
 * जाण। जियापरी ॥९४॥ तैसे सुखदुःखरूपीं। द्वंद्वीं जे पुण्यपापीं। न घेपिजती सर्पीं। गरुड जैसे *
 * ॥९५॥ आणि अनात्मवर्गनीरा। सांडूनि आत्मरसाचें क्षीरा। चरताति जे सविचारा। राजहंस ॥९६॥

* जैसा वर्षोनि भूतळीं। आपला रसु अंशुमाळी। मागौता आणी रश्मिजाळीं। बिंबासीचि ॥९७॥ तैसें *
 * आत्मभ्रांतीसाठीं। वस्तु विखुरली बारावाटीं। ते एकवटिती ज्ञानदृष्टी। अखंड जे ॥९८॥ किंबहुना *
 * आत्मयाचा। निर्धारिं विवेकु जयांचा। बुडाला वोघु गंगेचा। सिंधू जैसा ॥९९॥ पै आघवेंचि आपुलेपणें। *
 * नुरेचि जयां आर्भिंलाषणें। जैसें येथूनि पन्हां जाणें। आकाशा नाहीं ॥३००॥ जैसा अग्नीचा डोंगरु। *
 * नेघे कोणी बीजअंकुरु। तैसा मनीं जयां विकारु। उदैजेना ॥१॥ जैसा काढिलिया मंदराचळु। राहे *
 * क्षीराब्धि निश्चळु। तैसा नुठी जयां सळू। कामोर्मीचा ॥२॥ चंद्रमा कळीं धाला। न दिसे कोण आंगीं *
 * वोसावला। तेवीं अपेक्षेचा अवखळा। न पडे जयां ॥३॥ हें किती बोलूं असांगडें। जेवीं परमाणु नुरे *
 * वायूपुढें। तैसें विषयांचें नावडे। नांवचि जयां ॥४॥ एवं जे जे कोणी ऐसे। केले ज्ञानाख्यहुताशें। ते *
 * तेथ मिळती जैसें। हेमीं हेम ॥५॥ तेथ म्हणिजे कवणें ठाई। ऐसेंही पुससी कांहीं। तरी तें पद गा *
 * नाहीं। वेंचु जया ॥६॥ दृश्यपणें देखिजे। कां ज्ञेयत्वं जाणिजे। अमुकें ऐसें म्हणिजे। तें जें नव्हे ॥७॥

* न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यद्वत्त्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

* पै दिपाचिया बंबाळीं। कां चंद्र हन जें उजळी। हें काय बोलों अंशुमाळी। प्रकाशी जें ॥८॥ तें *
 * आघवेंचि दिसणें। जयातें कां न देखणें। विश्व भासतसे जेणें। लपालेन ॥९॥ जैसें शिंपीपण हारपे। *
 * तंव तंव खरें होय रुपें। कां दोरी लपतां सापें। फार होइजे ॥३१०॥ तैसीं चंद्रसूर्यादि थोरें। इयें तेजें

* जियें फारें। तियें जयाचेनि आंधारें। प्रकाशती ॥११॥ ते वस्तु कीं तेजोराशी। सर्वभूतात्मक सरिसी। *
 * चंद्रसूर्याचां मानसीं। प्रकाशे जे ॥१२॥ म्हणौनि चंद्रसूर्य कवडसां। पडती वस्तूच्या प्रकाशा। यालागीं *
 * तेज जें तेजसा। तें वस्तूचें आंग ॥१३॥ आणि जयाचां प्रकाशीं। जग हारपे चंद्रार्केंसीं। सचंद्र नक्षत्रें *
 * जैसीं। दिनोदयीं ॥१४॥ नातरी प्रबोधलिये वेळे। ते स्वप्नींची डिंडी मावळे। कां नुरेचि सांजवेळे। *
 * मृगतृष्णिका ॥१५॥ तैसा जिये वस्तूचां ठायीं। कोणहीच कां आभासु नाहीं। तें माझें निजधाम पाहीं। *
 * पाटाचें गा ॥१६॥ पुढती जे तेथ गेले। ते न घेतीचि माघौतीं पाउलें। महादधीं कां मिनले। स्रोत जैसे *
 * ॥१७॥ कां लवणाची कुंजरी। सूदलिया लवणसागरीं। होयचि ना माघारी। परती जैसी ॥१८॥ नाना *
 * गेलिया अंतराळा। न येतीचि वन्हिज्वाळा। नाहीं तमलोहौनि जळा। निघणें जेवीं ॥१९॥ तेवीं मजसीं *
 * एकवाटा। जे जाले ज्ञानें चोखटा। तयां पुनरावृत्तीची वाटा। मोडली गा ॥३२०॥ तेथ प्रज्ञापृथ्वीचा *
 * रावो। पार्थु म्हणे जी जी महापसावो। परी विनंती एकी देवो। चित्त देतु ॥२१॥ तरी देवेंसि स्वयें एक *
 * होती। मग माघौते जे न येती। तें देवेंसि भिन्न आथी। कीं आर्भिन्न जी ॥२२॥ जरी भिन्नचि *
 * अनादिसिद्ध। तरी न येती हें असंबद्ध। जे फुलां गेलें षट्पदा। ते फुलेंचि होतु पां ॥२३॥ पै लक्ष्याहुनि *
 * अनारिसे। बाण लक्ष्यीं शिवोनि जैसे। मागुते पडती तैसे। येतीचि ते ॥२४॥ नातरी तूंचि ते स्वभावें। *
 * तरी कोणें कोणासि मिळावें। आपणयासी आपण रुपावें। शस्त्रें वीं ॥२५॥ म्हणोनि तुजसी आर्भिन्ना *
 * जीवां। तुझा संयोगवियोगु देवा। नये बोलों अवयवां। शरीरेंसी ॥२६॥ आणि जे सदां वेगळे तुजसीं।

* तयां मिळणी नाहीं कोणे दिवसीं। मा येती न येती हे कायसी। वायबुद्धि ॥२७॥ तरी कोण गा तूतें। *
 * पावोनि न येती माघौते। हे विश्वतोमुखा मातें। बुझावीं जी ॥२८॥ इये आक्षेपीं अर्जुनाचां। तो *
 * शिरोमणि सर्वज्ञांचा। तोषला बोध शिष्याचा। देखोनियां ॥२९॥ मग म्हणे गा महामती। मातें पावोनि *
 * न येती पुढती। ते भिन्नाभिन्न रिती। आहाती दोनी ॥३०॥ जें विवेकें खोलें पाहिजे। तरी मी तेचि *
 * ते सहजें। ना आहाचवाहाच तरी दुजे। ऐसेही गमती ॥३१॥ जैसे पाण्यांहि वेगळा आपजतां *
 * दिसती कल्लोळा। एन्ही तरी निखळ। पाणीचि तें ॥३२॥ कां सुवर्णाहुनि आनें। लेणीं गमती भिन्नं। *
 * मग पाहिजे तंव सोनें। आघवेंचि तें ॥३३॥ तैसें ज्ञानाचिये दिठी। मजसीं आर्भिन्नचि ते त्रिरीटी। येर *
 * भिन्नपण तें उठी। अज्ञानास्तव ॥३४॥ आणि साचोकारेनि वस्तुविचारें। केंचें मज एकासि दुसरें। जें *
 * भिन्नाभिन्नव्यवहारें। उमसिजेल ॥३५॥ आघवेंचि आकाश सून पोटीं। बिंबचि जें आते खोटी। तें *
 * प्रतिबिंब कें उठी। कें रश्मि शिरे ॥३६॥ कां कल्पांतींचिया पाण्या। काय वोत भरताती धनंजया। *
 * म्हणोनि केंचे अंश आर्विक्रिया। एका मज ॥३७॥ परी ओघाचेनि मेळें। पाणी उजू परी वांकुडें जालें। *
 * रवी दुजेपण आलें। तोयबगें ॥३८॥ व्योम चौफळें कीं वाटोळें। हें ऐसें कायिसयाही मिळे। परी *
 * घटमठीं वेंटाळे। तैसेंही आथी ॥३९॥ हां गा निद्रेचेनि आधारे। काय एकलेनि जग न भरे। स्वप्नीचेनि *
 * जें अवतरे। रायपणें ॥४०॥ कां मिनलेनि किडाळें। वानिभेदासि ये सोळें। तैसा स्वमाया वेंटाळें। *

* शुद्ध जें मी ॥४१॥ तें अज्ञान एक रुढे। तेणें कोहं विकल्पांचें मांडे। मग विवरुनि कीजे फुडें। देहो *
 * मी ऐसें ॥४२॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥

* ऐसें शरीराचि येवढें। जें आत्मज्ञान वेगळें पडे। तें माझा अंशु ऐसें आवडे। थोडेपणें ॥४३॥ *
 * समुद्र कां वायुवशें। तरंगाकार उल्लसे। तो समुद्रांशु ऐसा दिसे। सानिवा जेवीं ॥४४॥ तेवीं जडातें *
 * जीवविता। देहअहंता उपजविता। मी जीव गमें पंडुसुता। जीवलोकीं ॥४५॥ पै जीवाचिया बोधा। *
 * गोचरु जो हा धांदा। तो जीवलोकशब्दा। आर्भिप्रावो ॥४६॥ अगा उपजणें निमणें। हें साचचि जें कां *
 * मानणें। तो जीवलोक मी म्हणें। संसारु हन ॥४७॥ एवंविध जीवलोकीं। तूं मातें ऐसा अवलोकीं। *
 * जैसा चंद्रु कां उदकीं। उदकातीत ॥४८॥ पै काश्मीराचा रवा। कुंकुमावरी पांडवा। आणिका गमे *
 * लोहिवा। तो तरी नव्हे ॥४९॥ तैसें अनादिपण न मोडे। माझें आर्क्रियत्व न खंडे। परी कर्ता भोक्ता *
 * ऐसें आवडे। ते जाण गा भ्रांती ॥५०॥ किंबहुना आत्मा चोखटु। होऊनि प्रकृतीसी एकवटु। बांधे *
 * प्रकृतिधर्माचा पाटु। आपणपयां ॥५१॥ पै मनादि साही इंद्रियें। श्रोत्रादी प्रकृतिकार्यें। तियें माझीं *
 * म्हणौनि होये। व्यापारारूढ ॥५२॥ जैसें स्वप्नीं परिव्राजें। आपणपयां आपण कुटुंब होईजे। मग *
 * तयाचेनि धांविजे। मोहें सैरा ॥५३॥ तैसा आपलिया विस्मृती। आत्मा आपणचि प्रकृती-। सारिखा *
 * गमोनि पुढती। तियेसीचि भजे ॥५४॥ मनाचां रथीं वळघे। श्रवणाचियां द्वारें निघे। मग शब्दाचिया

रिघे। रानामार्जी ॥५५॥ तोचि प्रकृतीचा वागोरा। करी त्वचेचिया मोहरा। आणि स्पर्शाचिया घोरा।
वना जाय ॥५६॥ कोणे एके अवसरीं। रिघोनि नेत्राचां द्वारीं। मग रूपाचां डोंगरीं। सैरा हिंडे ॥५७॥
कां रसनेचिया वाटा। निघोनि गा सुभटा। रसाचा दरकुटा। भरोंचि लागे ॥५८॥ नातरी येणेंचि घ्राणें।
देहेशु करी निघणें। मग गंधाचीं दारुणें। आडवें लंघी ॥५९॥ ऐसेनि देहेंद्रियनायकें। धरुनि मन
जवळिकें। भोगिजती शब्दादिकें। विषयभरणें ॥३६०॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः। गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥

परी कर्ता भोक्ता ऐसें। हें जीवाचें तेंचि दिसे। जें शरीरीं कां पैसे। येकाधिये ॥६१॥ जैसा
आथिला आणि विलासिया। तेंचि वोळखों ये धनंजया। जें राजसेव्या ठाया। वस्तीसि ये ॥६२॥ तैसा
अहंकर्तृत्वाचा वाढु। कां विषयेंद्रियांचा धुमाडु। हा जाणिजे तें निवाडु। जै देह पावे ॥६३॥ अथवा
शरीरातें सांडी। तन्ही इंद्रियांची तांडी। हे आपणपयांसवें काढी। घेऊनि जाय ॥६४॥ जैसा अपमानिला
आर्तिथि। ने सुकृताची संपत्ति। कां साइखडेयाची गति। सूत्रतंतू ॥६५॥ ना ना मावळतेनि तपनें।
नेइजती लोकांचीं दर्शनें। हें असो द्रुती पवनें। नेइजे जैसी ॥६६॥ तेवीं मनःषष्ठां ययां। इंद्रियांतें
धनंजया। देहराजु ने देहा-। पासूनि गेला ॥६७॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च। आर्द्धिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥९॥

मग येथ अथवा स्वर्गी। जेथ जें देह आपंगी। तेथ तैसेंचि पुढती पांगी। मनादिक ॥६८॥ जैसा
मालवलिया दिवा। प्रभेसि जाय पांडवा। मग उजळिजे तेथ तेधवां। तैसाचि फांके ॥६९॥ परी
ऐसैसिया राहाटी। आर्विवेकियांचिये दिठी। येतुलें हें किरीटी। गमेचि गा ॥३७०॥ जे आत्मा देहा
आला। आणि विषयो येणेचि भोगिला। अथवा देहोनि गेला। हें साचचि मानी ॥७१॥ एन्हवीं येणें
आणि जाणें। कां करणें आणि भोगणें। हें प्रकृतीचें तेणें। मानियेलें ॥७२॥

उत्क्रामंतं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्। विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥

परी देहाचें मोटकें उभें। आणि चेतना तेथ उपलभे। तिये चळवळेचेनि लोभें। आला आला
म्हणती ॥७३॥ तैसेंचि तयां संगती। इंद्रियें आपलालां अर्थीं वर्तती। तया नांव सुभद्रापती। भोगणें
जया ॥७४॥ पाठीं भोगक्षीण आपैसें। देह गेलिया तें न दिसे। तेथें गेला गेला ऐसें। बोभाती गा ॥७५॥
पें रुखु डोलतु देखावा। तरी वारा वाजतु मानावा। रुखु नसे तेथें पांडवा। नाहीं तो गा ॥७६॥ कां
आरसा समोर ठेविजे। आणि आपणपें तेथ देखिजे। तरी तेधवांचि जालें मानिजे। काय आधीं नाहीं
॥७७॥ कां परता केलिया आरिसा। लोपु जाला तया आभासा। तरी आपणपें नाहीं ऐसा। निश्चयो
करावा ॥७८॥ शब्द तरी आकाशाचा। परी कपाळीं पिटे मेघांचा। कां चंद्रीं वेगु अभ्राचा। आरोपिजे
॥७९॥ तैसें होइजे जाईजे देहें। तें आत्मसत्ते आर्विक्रिये। निष्टंकित्ती गा मोहें। आंधळे ते ॥३८०॥
येथ आत्मा आत्मयाचां ठायीं। देखिजे देहींचा धर्मु देहीं। ऐसे देखणें ते पाहीं। आन आहाती ॥८१॥

ज्ञानं कां जयांचे डोळे। देखोनि न राहाती देहींचे खोळे। सूर्यरश्मी आणियाळे। ग्रीष्मीं जैसे ॥८२॥
 तैसी विवेकाचेनि पैसें। जयांची स्फूर्ती स्वरूपीं बैसे। ते ज्ञानिये देखती ऐसें। आत्मयातें ॥८३॥ जैसें
 तारागणीं भरलें। गगन समुद्रीं बिंबलें। परी तें तुटोनि नाहीं पडिलें। ऐसें निवडे ॥८४॥ गगन गगनींचि
 आहे। हें आभासे तें वाये। तैसा आत्मा देखती देहें। गंवसिलाही ॥८५॥ खळाळाचां लगबगीं। फेडूनि
 खळाळाचां भागीं। देखिजे चंद्रिका कां उगी। चंद्रीं जेवीं ॥८६॥ कां नाडरचि भरे शोषे। सूर्य तो जैसा
 तैसाचि असे। देह होतां जातां तैसें। देखती मातें ॥८७॥ घट मटु घडले। तेचि पाठीं मोडले। परी
 आकाश तें संचलें। असतचि असे ॥८८॥ तैसें अखंडे आत्मसत्ते। अज्ञानदृष्टिकल्पितें। हें देहचि होतें
 जातें। जाणती फुडें ॥८९॥

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्। यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥९१॥

चैतन्य चढे ना वोहटे। चेष्टवी ना चेष्टे। ऐसें आत्मज्ञानें चोखटें। जाणती ते ॥३९०॥ आणि
 ज्ञानही आपैतें होईल। प्रज्ञा परमाणुही उगाणा देईल। सकल शास्त्रांचें येईल। सर्वस्व हातां ॥९१॥
 परी ते व्युत्पत्ती ऐसी। जरी विरक्ती न रिगे मानसीं। तरी सर्वात्मका मजसीं। नव्हेचि भेटी ॥९२॥
 पें तोंड भरो कां विचारा। आणि अंतःकरणीं विषयांसी थारा। तरी नातुडें धनुर्धरा। त्रिशुद्धी मी
 ॥९३॥ हां गा वोसणतयाचां ग्रंथीं। काइ तुटती संसारगुंती। कीं परिवसिलेया पोथी। वाचिली होय

॥९४॥ नाना बांधोनियां डोळे। घ्राणीं लाविजती मुक्ताफळें। तरी तयांचें काय कळे। मोल मान
 ॥९५॥ तैसा चितीं अहंते ठावो। आणि जिभे सकळशास्त्रांचा सरावो। ऐसेनि कोडी एक जन्म जावो।
 परी न पविजे मातें ॥९६॥ जो एक मी कां समस्तीं। व्यापकु असें भूतजातीं। ऐक तिये व्याप्ती। रूप
 करूं ॥९७॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥९२॥

तरी सूर्यासकट आघवी। हे विश्वरचना जे दावी। ते दीप्ति माझी जाणावी। आद्यंतीं आहे ॥९८॥
 जळ शोषूनि गेलिया सविता। ओलांश पुरवीतसे जे माघौता। ते चंद्रीं पंडुसुता। ज्योत्स्ना माझी
 ॥९९॥ आणि दहनपचनसिद्धी। करीतसे जे निरवधी। ते हुताशीं तेजोवृद्धी। माझीचि गा ॥४००॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा। पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥१३॥

मी रिगालों असें भूतळीं। म्हणौनि समुद्रमहाजळीं। हे पांसूची ढेंपुळी। विरेचिना ॥१॥ आणि
 भूतेंही चराचरें। हे धरितसे जियें अपारें। तियें मीचि धरीं धरे। रिगोनियां ॥२॥ गगनीं मी पंडुसुता।
 चंद्राचेनि मिसें अमृता। भरला जालों चालता। सरोवरू ॥३॥ तेथूनि फांकती रश्मिकर। ते पाट पेलुनि
 अपारा। सर्वौषधींचे आगर। भरितु असें मी ॥४॥ ऐसेनि सस्यादिकां सकळां। करीं धान्यजाती
 सुकाळा। दें अन्नद्वारा जिव्हाळा। भूतजातां ॥५॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥

* आणि निपजविलें अन्न। तरी तैसें केंचें दीपना जेणें जिरुनि समाधाना भोगिती जीव ॥६॥ *
 * म्हणौनि प्राणिजाताचां घटीं। करुनि कंदावरी आगिटी। दीप्ति जठरीं किरीटी। मीचि जालों ॥७॥ *
 * प्राणापानाचां जोडभातीं। फुंकफुंकोनियां अहोराती। आटीतसें नेणों किती। उदरामाजीं ॥८॥ शुष्कें *
 * अथवा स्निग्धें। सुपक्कें कां विदग्धें। परी मीचि गा चतुर्विधें। अन्नं पचीं ॥९॥ एवं मीचि आघवें जना *
 * जना जीववितें मीचि जीवना। जीवनीं मुख्य साधना। वन्हिही मीचि ॥१०॥ आतां ऐसियाहीवरी *
 * काई। सांगों व्याप्तीची नवाई। येथ दुजें नाहींचि घेई। सर्वत्र मी गा ॥११॥ तरी कैसेंनि पां वेखें। सदा *
 * सुखियें एकें। एकें तियें दुःखे। क्रांतें भूतें ॥१२॥ जैसी सगळिये पाटणीं। एकेंचि दीपें दिवेलावणी। *
 * जालिया कां न देखणीं। उरलीं एकें ॥१३॥ ऐसी हन उखिविखी। करित आहासि मानसीं कीं। तरी *
 * परिस तेही निकी। शंका ढेडी ॥१४॥ पें आघवा मीचि असे। येथ नाहीं कीर अनारिसें। परी प्राण्यांचिया *
 * उल्लासें। बुद्धी ऐसा ॥१५॥ जैसें एकचि आकाशध्वनि। वाद्यविशेषीं आनानीं। वाजावें पडे भित्रीं। *
 * नादांतरीं ॥१६॥ कां लोकचेष्टीं वेगळाला। जो हा एकचि भानु उदैला। तो आनानी परी गेला। *
 * उपेगासी ॥१७॥ नाना बीजधर्मानुरूपा। झाडीं उपजवी आपा। तैसें परिणमलें स्वरूपा। माझें जीवां *
 * ॥१८॥ अगा नेणा आणि चतुरा। पुढां निळयांचा दुसरा। नेणा सर्पत्वे जाला येरा। सुखालागीं ॥१९॥ *
 * हें असो स्वातीचें उदक। शुक्तीं मोतीं व्याळीं विखा। तैसा सज्ञानांसी मी सुखा। दुःख तों अज्ञानासी *

॥४२०॥

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

* एन्हवीं सर्वाचां हृदयदेशीं। मी अमुका आहें ऐसी। जे बुद्धि स्फुरे अहर्निशीं। ते वस्तु गा मी *
 * ॥२१॥ परी संतासवें वसतां। योगज्ञानीं पैसतां। गुरुचरण उपासितां। वैराग्येंसी ॥२२॥ येणेंचि *
 * सत्कर्में। अशेषही अज्ञान विरमे। जयांचें अहं विश्रामे। आत्मरूपीं ॥२३॥ ते आपेआप देखोनि देखीं। *
 * मियां आत्मेनि सदा सुखी। येथें मीवांचून अवलोकीं। आन हेतु असे ॥२४॥ अगा सूर्योदयो जालिया। *
 * सूर्ये सूर्यचि पहावा धनंजया। तेवीं मातें मियां जाणावया। मीचि हेतु ॥२५॥ ना शरीरपरातें सेवितां। *
 * संसारगौरवचि ऐकतां। देहीं जयाची अहंता। बुडोनि ठेली ॥२६॥ ते स्वर्गसंसारालागीं। धांवतां *
 * कर्ममार्गीं। दुःखाचां सेलभागीं। भागीन होती ॥२७॥ परी हेंही होणें अर्जुना। मजचिस्तव तया *
 * अज्ञाना। जैसा जागताचि हेतु स्वप्ना। निद्रेंतें होय ॥२८॥ पें अभ्रें दिवसु हारपला। तोही दिवसेंचि *
 * जाणों आला। तेवीं मी नेणोनि विषयो देखिला। मजचिस्तव भूतीं ॥२९॥ एवं निद्रा कां जागणिया। *
 * प्रबोधुचि हेतु धनंजया। तेवीं ज्ञाना अज्ञाना जीवांचिया। मीचि मूळ ॥३०॥ जैसें सर्पत्वा कां दोरा। *
 * दोरुचि मूळ धनुर्धरा। तैसा ज्ञाना अज्ञानाचिया संसारा। मियांचि सिद्धु ॥३१॥ म्हणौनि जैसा असें *
 * तैसया। मातें नेणोनि धनंजया। वेदु जाणों गेला तंव तया। जालिया शाखा ॥३२॥ तरी तिहीं *
 * शाखाभेदीं। मीचि जाणिजे त्रिशुद्धी। जैसा पूर्वापार नदी। समुद्रचि ठी ॥३३॥ आणि महासिद्धांतापासीं। *

* श्रुति हारपती शब्देसीं। जैसिया सगंधा आकाशीं। वातलहरी ॥३४॥ तैसें समस्तही श्रुतिजाता ठाके *
 * लाजिलें ऐसें निवांता। तें मीचि करीं यथावता। प्रकटोनियां ॥३५॥ पाठीं श्रुतीसकट अशेष। जग हारपे *
 * जेथ निःशेष। तें निजज्ञानही चोख। जाणता मीचि ॥३६॥ जैसें निदेलिया जागिजे। तेव्हां स्वप्नींचें *
 * कीर नाहीं दुजें। परि एकत्वही देखों पाविजे। आपलेंचि ॥३७॥ तैसें आपलें अद्वयपण। मी जाणतसें *
 * दुजेनवीण। तयाही बोधा कारण। जाणता मीचि ॥३८॥ मग आगी लागलिया कापुरा। ना काजळी *
 * ना वैश्वानरा। उरणें नाहीं वीरा। जयापरी ॥३९॥ तेवीं समूळ आर्विद्या खाये। तें ज्ञानही जें बुडोनि *
 * जाये। तन्ही जें नाहीं कीर नोहे। आणि न साहे असणेंही ॥४०॥ पै विश्व घेऊनि गेला मार्गेंसीं। तया *
 * चोरातें कवण कें गिवसी। जे कोणी एकी दशा ऐसी। शुद्ध ते मी ॥४१॥ ऐसें जडाजडव्यासी। रूप *
 * करितां कैवल्यपती। ठी केली निरुपहितीं। आपुलां रूपीं ॥४२॥ तो आघवाचि बोधु सहसा। अर्जुनीं *
 * उमटला कैसा। व्योमींचा चंद्रोदयो जैसा। क्षीरार्णवीं ॥४३॥ कां प्रतिभिंती चोखटे। समोरील चित्र *
 * उमटे। तैसा अर्जुनें आणि वैकुंठें। नांदतसे बोधु ॥४४॥ तरी बाप वस्तुस्वभावो। फावे तंव तंव गोडिये *
 * थांवो। म्हणौनि अनुभवियांचा रावो। अर्जुन म्हणे ॥४५॥ जी व्यापकपण बोलतां। निरुपाधिक जें *
 * आतां। स्वरूप प्रसंगता। बोलिले देवो ॥४६॥ तें एक वेळ अव्यंगवाणें। कीजो कां मज सांगणें। तेथ *
 * द्वारकेचा नाथु म्हणे। भलें केलें ॥४७॥ पै अर्जुना आम्हांहि वाडेंकोडें। अखंड बोलों आवडे। परी *

* काय कीजे न जोडे। पुसतें ऐसें ॥४८॥ आजि मनोरथांसि फळा। जोडलासि तूं केवळा। जे तोंड *
 * भरुनि निखळा। आलासि पुसों ॥४९॥ जें अद्वैतावरीही भोगिजे। तें अनुभवींचें तूं विरजें। पुसोनि मज *
 * माझें। देतासि सुख ॥४५०॥ जैसा आरिसा आलिया जवळा। दिसे आपणपें आपलां डोळां। तैसा *
 * संवादिया तूं निर्मळा। शिरोमणी ॥५१॥ तुवां नेणोनि पुसावें। मग आम्हीं परिसऊं बैसावें। तो गा हा *
 * पाडु नव्हे। सोयरेया ॥५२॥ ऐसें म्हणौनि आलिंगिलें। कृपादृष्टी अवलोकिलें। मग देवो काय बोलिले। *
 * अर्जुनेंसीं ॥५३॥ पै दोहीं वोठीं एक बोलणें। दोही चरणीं एक चालणें। तैसें पुसणें सांगणें। तुझें माझें *
 * ॥५४॥ एवं आम्हीं तुम्ही येथें। देखावें एका अर्थातें। सांगतें पुसतें येथें। दोन्हा एक ॥५५॥ ऐसा *
 * भुलला देवो मोहें। अर्जुनातें आलिंगूनि ठाये। मग बिहाला म्हणे नोहे। आवडी हे ॥५६॥ जाले *
 * इक्षुरसाचे ढाळा। तरी लवण देणें किडाळा। जे संवादसुखाचें रसाळा। नासेल थितें ॥५७॥ आधींच *
 * आम्हां यया कांहीं। नरनारायणा सिनें नाहीं। परी आतां जिरो माझां ठाई। वेगु हा माझा ॥५८॥ इया *
 * बुद्धी सहसा। श्रीकृष्ण म्हणे वीरेशा। पै गा तो तुवां कैसा। प्रश्नु केला ॥५९॥ जो अर्जुन कृष्णीं विरत *
 * होता। तो परतोनिया मागुता। प्रश्नावळीची कथा। ऐकों आला ॥४६०॥ येथ सद्गदें बोलें। अर्जुनें *
 * जी जी म्हणितलें। निरुपाधिक आपुलें। रूप सांगा ॥६१॥ यया बोला तो शार्ङ्गी। तेंचि सांगावयालागीं। *
 * उपाधी दोहीं भागीं। निरूपीत असे ॥६२॥ पुसिलिया निरुपहिता। उपाधि कां सांगे येथ। हें कोणहाही *
 * प्रस्तुता। गमे जरी ॥६३॥ तरी ताकाचे अंश फेडणें। याचि नांव लोणी काढणें। चोखाचिये शुद्धी *

* तोडणें। कीडचि जेवीं ॥६४॥ बाबुळीचि सारावी हातें। परी पाणी तंव असे आइतें। अभ्रचि जावें गगन *
 * तें। सिद्धचि कीं ॥६५॥ वरील कोंड्याचा गुंडाळा। झाडूनि केलिया वेगळा। कणु घेतां विरंगोळा। असे *
 * काई ॥६६॥ तैसा उपाधि उपहितां। शेवटु जेथ विचारितां। तें कोणातेंही न पुसतां। निरुपाधिक *
 * ॥६७॥ जैसें न संघणेवरी। बाळा पतीसी रूप करी। बोलु निमालेपणें विवरी। अचर्चातें ॥६८॥ पै *
 * सांगणेयाजोगें नव्हे। तेथिंचें सांगणें ऐसें आहे। म्हणौनि उपाधि लक्ष्मीनाहें। बोलिजे आदीं ॥६९॥ *
 * पाडिव्याची चंद्ररेखा। निरुती दावावया शाखा। दाविजे तेवीं औपाधिका। बोली इया ॥४७०॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

* मग तो म्हणे गा सव्यसाची। पै इये संसारपाटणींची। वस्ती साविया टांची। दुपुरुषीं ॥७१॥ *
 * जैसी आघवांचि गगनीं। नांदतें दिवोरात्री दोन्ही। तैसे संसारराजधानीं। दोन्हीचि हे ॥७२॥ आणिकही *
 * तिजा पुरुष आहे। परी तो या दोहींचें नांव न साहे। जो उदेला गावेंसीं खाये। दोहींतें ययां ॥७३॥ *
 * परी ते तंव गोठी असो। आधीं दोहींची हे परियेसो। संसारग्रामा वसों। आलें असती ॥७४॥ एक *
 * आंधळा वेडा पंगु। येर सर्वांगें पुरता चांगु। परी ग्रामगुणें संगु। घडला दोघां ॥७५॥ तया एका नाम *
 * क्षरु। येरातें म्हणती अक्षरु। इहीं दोहींचि परी संसारु। कोंदला असे ॥७६॥ आतां क्षरु तो कवणु। *
 * अक्षरु तो किलक्षणु। हा आर्भिप्रावो संपूर्णु। विवंचूं गा ॥७७॥ तरी महदहंकारा। लागुनियां धनुर्धरा।

* तृणांतीचा पांगोरा-। वरी पै गा ॥७८॥ जें कांहीं सानें थोरा। चालतें अथवा स्थिर। किंबहुना गोचरा *
 * मनबुद्धी जें ॥७९॥ जेतुलें पांचभौतिक घडतें। जें नामरूपा सांपडतें। गुणत्रयाचां पडतें। कामठां जें *
 * ॥४८०॥ भूताकृतीचें नाणें। घडत भांगारें जेणें। काळासिं जूं खेळणें। जिहीं कवडां ॥८१॥ जाणणेंचि *
 * विपरीतें। जें जें कांहीं जाणिजतें। जें प्रतिक्षणीं निमतें। होऊनियां ॥८२॥ अगा काढूनि भ्रांतीचें दांगा। *
 * उभवी सृष्टीचें आंगा। हें असो बहु जग। जया नाम ॥८३॥ पै अष्टधा भिन्न ऐसें। जें दाविलें प्रकृतिमिसें। *
 * जें क्षेत्रद्वारा छतिसें। भार्गीं केलें ॥८४॥ हें मागील सांगों किती। अगा आतांचि जें प्रस्तुती। *
 * वृक्षाकाररूपकरीती। निरूपिलें ॥८५॥ तें आघवेंचि साकारें। कल्पूनी आपणपयां पुरें। जालें असे *
 * तदनुसारें। चैतन्यचि ॥८६॥ जैसा कुहां आपणचि बिंबे। सिंह प्रतिबिंब पाहतां क्षोभे। मग क्षोभला *
 * समारंभें। घाली तेथ ॥८७॥ कां सलिलीं असतचि असे। व्योमावरी व्योम बिंबे जैसें। अद्वैत होऊनि *
 * तैसें। द्वैतें घेपे ॥८८॥ अर्जुना गा यापरी। साकार कल्पूनि पुरी। आत्मा विस्मृतीची करी। निद्रा तेथ *
 * ॥८९॥ पै स्वप्नीं सेजार देखिजे। मग पड्डणें जैसें तेथ कीजे। तैसें पुरीं शयन जाणिजे। आत्मयासी *
 * ॥४९०॥ पाठीं तिये निद्रेचेनि भरें। मी सुखी दुःखी म्हणत घोरें। अहंसमाधीचेनि थोरें। वोसणाये *
 * सादें ॥९१॥ हा जनकु हे माता। हा मी गौर हीन पुरता। पुत्र वित्त कांता। माझें हें ना ॥९२॥ ऐसिया *
 * वेंघौनि स्वप्ना। धांवत भवस्वर्गाचिया राना। तया चैतन्या नाम अर्जुना। क्षर पुरुषु गा ॥९३॥ आतां *
 * ऐक क्षेत्रज्ञु येणें। नामें जयातें बोलणें। जग जीवु कां म्हणे। जिये दशेतें ॥९४॥ जो आपुलेनि विसरें।

* सर्वभूतत्वं अनुकरे। तो आत्मा बोलिजे क्षरें। पुरुषुनावें। ॥९५॥ जे तो वस्तुस्थिति पुरता। म्हणौनि *
 * आली पुरुषता। वरी देहपुरीं निदैजतां। पुरुषनावें ॥९६॥ आणि क्षरपणाचा नाथिला। आळु यया *
 * ऐसेनि आला। जे उपाधीचि आतला। म्हणोनियां ॥९७॥ जैसी खळाळीचिया उदका-। सरसीं *
 * उदाळे चंद्रिका। तैसा विकारां औपाधिकां। ऐसाचि गमे ॥९८॥ कां खळाळु मोटका शोषे। आणि *
 * चंद्रिका तें सरिसींच भ्रंशे। तैसा उपाधिनाशीं न दिसे। उपाधिकु ॥९९॥ ऐसें उपाधीचेनि पाडें। *
 * क्षणिकत्व यातें जोडे। तेणें खोंकरपणें घडे। क्षर हें नांव ॥१००॥ एवं जीवचैतन्य आघवें। हें क्षर *
 * पुरुष जाणावें। आतां रूप करूं बरवें। अक्षरासी ॥१०१॥ तरी अक्षरु जो दुसरा। पुरुष पें धनुर्धरा। तो *
 * मध्यस्थु गा गिरिवरां। मेरु जैसा ॥१०२॥ जे तो पृथ्वी पाताळ स्वर्गीं। इहीं न भेदे तिहीं भागीं। तैसा दोहीं *
 * ज्ञानाज्ञानांणीं। पडेना जो ॥१०३॥ ना येथ यथार्थज्ञानें एक होणें। ना अन्यत्वं दुजें घेणें। ऐसें निखळ जें *
 * नेणणें। तेंचि तें रूप ॥१०४॥ पांसुता निःशेष जाये। ना घटभांडादिकें होये। तया मृत्पिंडा ऐसें आहे। *
 * मध्यस्थ जें ॥१०५॥ पें आटोनि गेलिया सागरु। मग तरंगु ना नीरु। तया ऐशी अनाकारु। जे दशा गा *
 * ॥१०६॥ पार्था जागणें तरी बुडे। परी स्वप्नाचें कांहीं न मांडे। तैसिये निद्रे सांगडें। निहाळिजे ॥१०७॥ विश्व *
 * आघवेंचि मावळे। आणि आत्मबोधु तरी नुजळे। तिये अज्ञानदशे केवळे। अक्षरु नांव ॥१०८॥ अजामेकां *
 * अजा म्हणतां जन्म नाहीं। त्यासि नाशु कैचा कायी। यालागीं अक्षरु पाही। अज्ञानघन ॥१०९॥ अ॥

* सर्वा कळीं सांडिलें जैसें। चंद्रपण उरे अं वसे। रूप जाणावें तैसें। अक्षराचें ॥११॥ पें सर्वोपाधिविनाशें। *
 * हे जीवदशा जेथ पैसे। फळपाकांत जैसें। झाड बीजीं ॥११०॥ तैसें उपाधी उपहित। थोकोनि ठाके *
 * जेथ। तयातें अव्यक्ता बोलती गा ॥१११॥ जयासी कां बीजभावो। वेदांतीं केला ऐसा आवो। तो तया *
 * पुरुषा ठावो। अक्षराचा ॥११२॥ जेथुनी अन्यथाज्ञाना। फांकोनि जागृति स्वप्न। नानाबुद्धीचें राना। *
 * रिगालें असे ॥११३॥ जीवत्व जेथुनी किरीटी। विश्व उठवितचि उठी। ते उभय बोधांची मिठी। अक्षरु *
 * पुरुषु ॥११४॥ येरु क्षरु पुरुषु कां जनीं। जिहीं खेळे जागृतीं स्वप्नीं। तिया अवस्था जो दोन्ही। *
 * वियाला गा ॥११५॥ पें अज्ञानघनसुषुप्ती। ऐसैसी जे कां ख्याती। या उणी येकी प्राप्ती। ब्रह्माची जे *
 * ॥११६॥ साचचि पुढती वीरा। जरी न येतां स्वप्नजागरा। तरी ब्रह्मभावो साचोकारा। म्हणों येता *
 * ॥११७॥ परी प्रकृतिपुरुषें दोनी। अभ्रें जालीं जिये गगनीं। क्षेत्रक्षेत्रज्ञ स्वप्नीं। देखिला जियें ॥११८॥ हें *
 * असो अधोशाखा। या संसाररूपा रुखा। मूळ तें पुरुषा। अक्षराचें ॥११९॥ हा पुरुषु कां म्हणिजे। जे *
 * पूर्णपणेंचि निजें। पें मायापुरीं पडुडिजे। तेणेंही बोलें ॥१२०॥ आणि विकारांची जे वारी। ते विपरीत *
 * ज्ञानाची परी। नेणिजे जिये माझारीं। ते सुषुप्ती गा हा ॥१२१॥ म्हणौनि यया आपैसें। क्षरणें पां नसे। *
 * आणिकहीं हा न नाशे। ज्ञानाउणें ॥१२२॥ यालागीं हा अक्षरु। ऐसा वेदांतीं डगरु। केला देखसी *
 * थोरु। सिद्धांताचा ॥१२३॥ ऐसें जीवकार्यकारण। जया मायासंगुचि लक्षण। अक्षर पुरुषु जाणा। *
 * चैतन्य तें ॥१२४॥ आतां अन्यथाज्ञानीं। या दोनी अवस्था जया जनीं। तया हरपती घनीं। अज्ञानतत्त्वीं

॥२५॥ तें अज्ञान ज्ञानीं बुडालिया। ज्ञानें कीर्तिमुखत्व केलिया। जैसा वन्हि काष्ठ जाळूनियां। स्वयें जळे ॥२६॥ तैसें अज्ञान ज्ञानें नेलें। आपण वस्तु देऊनि गेलें। ऐसें जाणणेनिवीण उरलें। जाणतें जे ॥२७॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

तें तो गा उत्तम पुरुष। जो तृतीय कां निष्कर्षु। दोहींहून आणिकु। मागिला जो ॥२८॥ सुषुप्ती आणि स्वप्ना-। पासूनि बहुवें अर्जुना। जाणणें जैसें आना। बोधाचेंचि ॥२९॥ कां रश्मी हन मृगजळा-। पासूनि अर्कमंडळा। अफाटु तेवीं वेगळा। उत्तमु गा ॥५३०॥ हें ना काष्ठींचा काष्ठाहुनी। अनारिसा जैसा वन्ही। तैसा क्षराक्षरापासुनी। आनचि तो ॥३१॥ पैं ग्रासूनि आपली मर्यादा। एक करीत नदीनदां। उठी कल्पांतीं उदावादा। एकार्णवाचा ॥३२॥ तैसें स्वप्न ना सुषुप्ती। ना जागराची गोठी आथी। जैसी गिळिली दिवोराती। प्रळयतेजें ॥३३॥ मग एकपण ना दुजें। असें नाहीं हें नेणिजे। अनुभव निर्बुजे। बुडाला जेथें ॥३४॥ ऐसें आथि जें कांहीं। तें तो उत्तम पुरुष पाहीं। जें परमात्मा इहीं। बोलिजे नामीं ॥३५॥ तेंही एथ न मिसळतां। बोलणें जीवत्वे पंडुसुता। जैसी बुडणेयाची वार्ता। थडियेचा कीजे ॥३६॥ तैसें विवेकाचिये कांठी। उभें लेया किरीटी। पारावाराचिया गोठी। करणें वेदां ॥३७॥ म्हणौनि पुरुषु क्षराक्षरा दोन्ही देखोनि अवर। यातें म्हणती पर। आत्मरूप ॥३८॥ अर्जुना

ऐसिया परी। परमात्मा शब्दवरी। सूचिजे गा अवधारीं। पुरुषोत्तमु ॥३९॥ एन्हीं न बोलणेनि बोलणें। जेथिंचें सर्व नेणिवा जाणणें। कांहींच न होनि होणें। जे वस्तु गा ॥५४०॥ सोहं तेंही अस्तवले। जेथ सांगतेंचि सांगणें जालें। द्रष्टवेंसी गेलें। दृश्य जेथ ॥४१॥ आतां बिंबा आणि प्रतिबिंबा-। मार्जी केंची हें म्हणों नये प्रभा। जन्ही कैसेनि हे लाभा। जायेचि ना ॥४२॥ कां घ्राणा फुला दोहीं। द्रुती असे जे माझारिलां ठायीं। ते न दिसे तरी नाहीं। ऐसें बोलों नये ॥४३॥ तैसें द्रष्टा दृश्य हें जाये। मग कोण म्हणे काय आहे। हेंचि अनुभवं तेंचि पाहे। रूप तया ॥४४॥ जो प्रकाश्येवीण प्रकाशु। ईशितव्येवीण ईशु। आपणेनीचि अवकाशु। वसवीत असे जो ॥४५॥ जो नादें ऐकिजता नादु। स्वादें चाखिजता स्वादु। जो भोगिजतसे आनंदु। आनंदेंचि ॥४६॥ सुखासि सुख जोडिलें। जें तेज तेजासि सांपडलें। शून्यही बुडालें। महाशून्यीं जिये ॥४७॥ जो पूर्णतेचा परिणाणु। पुरुषु गा सर्वोत्तमु। विश्रांतीचाही विश्रामु। विराला जेथें ॥४८॥ जो विकासाहीवरी उरता। ग्रासातेंही ग्रासूनि पुरता। जो बहुतें पाडें बहुतां-। पासूनि बहु ॥४९॥ पैं नेणतयाप्रती। रूपेपणाची प्रतीती। रूपें न होउनि शुक्ती। दावी जेवीं ॥५०॥ कां नाना अलंकारदशे। सोनें न लपत लपालें असे। विश्व न होनियां तैसें। विश्व जो धरी ॥५१॥ हें असो जलतरंगा। नाहीं सिनानेंपण जेवीं गा। तेवीं दिसता प्रकाशु जगा। आपणचि जो ॥५२॥ आपलिया संकोचविकाशा। आपणचि रूप वीरेशा। हा जळीं चंद्र हन जैसा। समग्र गा ॥५३॥ तैसा विश्वपणें कांहीं होये। विश्वलोपीं केहीं न जाये। जैसा रात्री दिवसें नोहे। द्विधा रवि ॥५४॥ तैसा

कहींचि कोणीकडे। कायिसेनिहि वेंचीं न पडे। जयाचें सांगडें। जयासीचि ॥५५॥

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

जो आपणपेंचि आपणया। प्रकाशीतसे धनंजया। काय बहु बोलों जया। नाहीं दुजें ॥५६॥ तो गा मी निरुपाधिकु। क्षराक्षरोत्तमु एकु। म्हणोनि म्हणे वेद लोकु। पुरुषोत्तमु ॥५७॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्वविद् भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

परी हें असो ऐसिया। मज पुरुषोत्तमातें धनंजया। जाणे जो पाहलेया। ज्ञानमित्रें ॥५८॥ चेइलिया आपुलें ज्ञान। जैसें नाहींचि होय स्वप्न। तैसें स्फुरतें जया त्रिभुवना वावों जालें ॥५९॥ कां हातीं घेतलिया माळा। फिटे सर्पाभासाचा कांटाळा। तैसा माझेनि बोधें टवाळा। नागवे जो ॥५६०॥ लेणें सोनेंचि जो जाणे। तो लेणेपण तें वावो म्हणे। तेवीं मी जाणोनि जेणें। वाळिला भेदु ॥६१॥ मग म्हणे सर्वत्र सच्चिदानंदु। मीचि एकु स्वतःसिद्धु। जो आपणेनसीं भेदु। नेणोनि जाणे ॥६२॥ तेणेंचि सर्व जाणितलें। हेंहीं म्हणणें थेंकुलें। जे तया सर्व उरलें। द्वैत नाहीं ॥६३॥ म्हणोनि माझिया भजना। उचितु तोचि अर्जुना। गगन जैसें आलिंगना। गगनाचिया ॥६४॥ क्षीरसागरा परगुणें। कीजे क्षीरसागरचिपणें। अमृतचि होऊनि मिळणें। अमृतीं जेवीं ॥६५॥ साडेपंधरा मिसळावें। तें साडेपंधरेंचि होआवें। तेवीं मी जालिया संभवे। भक्ति माझी ॥६६॥ हां गा सिंधूसि आनी होती। तरी गंगा कैसेनि

मिळती। म्हणोनि मी न होतां भक्ती। अन्वयो आहे ॥६७॥ ऐसियालागीं सर्व प्रकारीं। जैसा कल्लोलु अनन्यु सागरीं। तैसा मातें अवधारीं। भजिन्नला जो ॥६८॥ सूर्या आणि प्रभे। एकवंची जेणें लोभें। तो पाडु मानूं लाभे। भजना तया ॥६९॥ एवं कथिलयादारभ्या। जें हें सर्व शास्त्रैकलभ्या। उपनिषदां सौरभ्या। कमळदळां जेवीं ॥५७०॥ हें शब्दब्रह्माचें मथितें। व्यासप्रज्ञेचेनि हातें। मथूनि काढिलें आयितें। सार आम्हीं ॥७१॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ। एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

जे ज्ञानामृताची जान्हवी। जे आनंदचंद्रींची सतरावी। विचारक्षीरार्णवींची नवी। लक्ष्मी जे हे ॥७२॥ म्हणोनि आपुलेनि पदें वर्णें। अर्थाचेनि जीवेंप्राणें। मीवांचोनि हों नेणे। आन कांहीं ॥७३॥ क्षराक्षरत्वं समोर जालें। तयांचें पुरुषत्व वाळिलें। मग सर्वस्व मज दिधलें। पुरुषोत्तमीं ॥७४॥ म्हणोनि जगीं गीता। मियां आत्मेनि पतिव्रता। जे हे प्रस्तुत तुवां आतां। आकर्णिली ॥७५॥ साचचि बोलाचें नव्हे हें शास्त्र। पें संसारु जिणतें हें शस्त्र। आत्मा अवतरविते मंत्र। अक्षरें इयें ॥७६॥ परी तुजपुढां सांगितलें। तें अर्जुना ऐसें जालें। जें गौप्यधन काढिलें। माझें आजि ॥७७॥ मज चैतन्यशंभूचां माथां। जो निक्षेपु होता पार्था। तया गौतमु जालासि आस्था-। निधी तूं गा ॥७८॥ चोखटिवा आपुलिया। पुढिला उगाणा घेयावया। तया दर्पणाचीचि परी धनंजया। केली आम्हां ॥७९॥ कां भरलें चंद्रतारांगणीं। नभ सिंधू आपणयामार्जी आणी। तैसा गीतेसीं मी अंतःकरणीं। सूदला तुवां ॥५८०॥

* जे त्रिविधमळकटा। तूं सांडिलासी सुभटा। म्हणौनि गीतेसीं मज वसौटा। जालासि गा ॥८१॥ परी *
 * हें बोलों काय गीता। जे हे माझी उन्मेषलता। जाणे तो समस्ता। मोहा मुके ॥८२॥ सेविली *
 * अमृतसरिता। रोगु दवडूनि पंडुसुता। अमरपणा उचिता। देऊनि घाली ॥८३॥ तैसी गीता हे *
 * जाणितलिया। काय विस्मयो मोह जावया। परी आत्मज्ञानें आपणपयां। मिळिजे येथ ॥८४॥ जया *
 * आत्मज्ञानाचां ठायीं। कर्म आपुलेया जीविता पाहीं। होऊनियां उतराई। लया जाय ॥८५॥ हारपलें *
 * दावूनि जैसा। मागु सरे वीरविलासा। ज्ञानचि कळस वळघे तैसा। कर्मप्रासादा ॥८६॥ म्हणौनि *
 * ज्ञानिया पुरुषा। कृत्य करूं सरलें देखा। ऐसा अनाथांचा सखा। बोलिला तो ॥८७॥ तें श्रीकृष्णवचनामृता *
 * पार्थीं भरोनि असे वोसंडता। मग व्यासकृपा प्राप्त। संजयासी ॥८८॥ तो धृतराष्ट्राया। सूतसे पान *
 * करावया। म्हणौनि जीवितान्तु तेया। नव्हेचि भारी ॥८९॥ एन्हवीं गीताश्रवणअवसरीं। आवडों *
 * लागतां अनधिकारी। परी शेखीं तेचि उजरी। पातला भली ॥९०॥ जेव्हां द्राक्षीं दूध घातलें। तेव्हां *
 * वायां गेलें गमलें। परी फळपाकीं दुणावलें। देखिजे जेवीं ॥९१॥ तैसीं हरीवक्त्रींचीं अक्षरें। संजयें *
 * सांगितलीं आदरें। तिहीं अंधु तोही अवसरें। सुखिया जाला ॥९२॥ तेंचि मन्हाटेनि विन्यासें। मियां *
 * उन्मेषें ठसेंठोंबसें। जाणें नेणें तैसें। निरोपिलें ॥९३॥ सेवंतीये अरसिकांही। आंग पाहतां विशेषु तरी *
 * नाहीं। परी सौरभ्य नेलें तिहीं। भ्रमरीं जाणिजे ॥९४॥ तैसें घडतें प्रमेय घेइजे। उणें तें मज देइजे। *

* जें नेणणें हेंचि सहजें। रूप कीं बाळा ॥९५॥ परी नेणतें जन्ही होये। तन्ही देखोनि बाप कीं माये। हर्ष *
 * केंहीं न समाये। चोज करिती ॥९६॥ तैसें संत माहेर माझें। तुम्हीं मिनलिया मी लाडैजे। तेंचि *
 * ग्रंथाचेनि व्याजें। जाणिजो जी ॥९७॥ आतां विश्वात्मकु हा माझा। स्वामी श्रीनिवृत्तिराजा। तो *
 * अवधारू वाक्यपूजा। ज्ञानदेवो म्हणे ॥९८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगोनाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

(श्लोक २०; ओव्या ५९८)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।